ओम्

सृष्टि संचालक

आचार्य अग्निव्रत

ओ३म्

सृष्टि संचालक

लेखक

आचार्य अग्निव्रत

प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

(संचालक वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान)

सम्पादक

डॉ. मधुलिका आर्या एवं विशाल आर्य

उपप्राचार्या एवं प्राचार्य, वैदिक एवं आधुनिक भौतिकी शोध संस्थान

द वेद साइंस पब्लिकेशन

भीनमाल (राज.)

प्रथम संस्करण
वर्ष 2024

महर्षि दयानन्द २००वाँ जन्मदिवस, फाल्गुन कृष्ण १०/२०८०
05 मार्च 2024

कॉपीराइट © सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : ₹120/-

प्रकाशक : **द वेद साइंस पब्लिकेशन**
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम, भीनमाल
जिला - जालोर (राजस्थान) - 343029
वेबसाइट : www.thevedscience.com,
www.vaidicphysics.org
ईमेल : thevedscience@gmail.com
सम्पर्क सूत्र : 9530363300

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
1.	भूमिका	1
2.	ईश्वर के अस्तित्व की वैज्ञानिकता	4
3.	ईश्वरप्रसूत भौतिकी के नियम	6
4.	क्यों, किसने एवं किसके लिए प्रश्न नहीं ?	10
5.	बिग-बैंग सिद्धान्त के सन्दर्भ में	14
6.	अनन्त ब्रह्माण्ड (इटर्नल यूनिवर्स)	18
7.	विज्ञान क्या है ?	21
8.	दर्शन व वैदिक विज्ञान	24
9.	सामान्यत: ईश्वर का अनुभव क्यों नहीं होता ?	36
10.	ईश्वर का वैज्ञानिक स्वरूप	42
11.	ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली	55
12.	अद्वैतवाद समीक्षा	58

* * * * *

भूमिका

जब से मनुष्य इस पृथिवी पर जन्मा है, तभी से उसे ईश्वर तत्त्व के विषय में कुतूहल रहा है और प्रायः मनुष्य ईश्वर को किसी न किसी प्रकार से मानता भी रहा है। वैदिक मत, जो महाभारत काल तक इस पृथिवी पर एकमात्र सत्य एवं सार्वकालिक धर्म के रूप में प्रचलित था, ईश्वर तत्त्व का सुन्दर व वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। महाभारत युद्ध के उपरान्त वैदिक धर्म का पतन होते-2 भूमण्डल पर अनेकों मत-मतान्तरों का जन्म हुआ और उन्होंने ईश्वर तत्त्व के सत्य स्वरूप के स्थान पर अपनी-2 कल्पना अथवा वेद के कुछ मन्त्रों के सत्यार्थ को न समझ पाने के कारण नाना प्रकार के ईश्वरों की विभिन्न मान्यताओं का प्रचार किया। नाना कल्पित ईश्वरों की मान्यता ने इस संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक कल्पित मत-सम्प्रदायों को जन्म दिया। इनमें से अनेक मत दूसरे मतों के विरुद्ध प्रतिक्रियावश उत्पन्न होते गये।

संसार में चार्वाक, बौद्ध व जैन आदि नास्तिक मत कुछ कल्पित ईश्वरवादी मतों के पशुबलि आदि पापों के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुए। उधर इस्लाम आदि मत विकृत वैदिक धर्म की भ्रान्त धारणाओं जैसे— मूर्तिपूजा, बहुदेववादादि की प्रतिक्रियावश उत्पन्न हुए। सिक्ख आदि कुछ मत सामाजिक समरसता व मत-मतान्तरों की एकता के उद्देश्य से चलाये गये। सार यह है कि भूमण्डल में सर्वमान्य एकमात्र सत्य सनातन वैदिक मत के स्थान पर हजारों मत-मतान्तर उत्पन्न हो गये

और सम्पूर्ण मानवता खण्ड-2 हो गयी। अपनी-2 अन्ध आस्थाओं के आधार पर नाना ईश्वरों की पूजा नाना प्रकार से इस संसार में हो रही है, तो कुछ ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर रहे हैं। ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने वाले चार्वाक, जैन व बौद्ध मत का दार्शनिक व वैज्ञानिक दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है, पुनरपि जैनमत के कुछ विद्वान् व वैज्ञानिक जैन दर्शन की वैज्ञानिक व्याख्या का अच्छा प्रयास करते देखे जाते हैं।

वर्तमान विकसित विज्ञान का नितान्त भोगवादी प्रवाह धर्म व ईश्वर की सत्ता को विशेष चुनौती दे रहा है। इस चुनौती को स्वीकार करने का सामर्थ्य ईश्वरवादी मतों पौराणिक मत[१], ईसाई, इस्लामी, सिक्ख, यहूदी आदि किसी के भी पास दिखाई नहीं देता। यही कारण है कि इन मतों के दृढ़ अनुयायी भी वर्तमान विज्ञान की चकाचौंध से प्रभावित होकर पाश्चात्य भोगवादी विचारधारा के प्रवाह में तीव्र वेग से बहे जा रहे हैं। शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के अभाव में आर्यसमाज की भी यही दुरवस्था हो चुकी है। सभी ईश्वरवादी मत अपने-2 कर्मकाण्डों का निर्वहन भले ही करते प्रतीत हो रहे हों, अन्दर से ईश्वर के प्रति अविश्वास से भरते जा रहे हैं। कुछ कट्टरपन्थियों के अतिरिक्त अधिकांश ईश्वरवादी अपने-2 शास्त्रों का न तो गम्भीर अध्ययन करते हैं और न ही उन पर दृढ़ता से विश्वास करते हैं।

अमेरिका वा यूरोप आदि देश भले ही संसार भर में ईसाई मिशनरी भेजकर ईसाईकरण का षड्यन्त्र चला रहे हैं, परन्तु अन्दर से वहाँ की

[1] वैदिक धर्म का विकृत रूप, जिसे आज हिन्दू वा सनातन धर्म नाम दिया जाता है।

युवा पीढ़ी बाइबिल की शिक्षाओं से दूर होकर आधुनिक भोगवादी दलदल, जो बाइबिल की शिक्षाओं के सर्वथा विपरीत है, में पूर्ण रूप से फँस चुकी है। इस्लामी देशों में भी ऐसी हवा चलने लगी है। जो कट्टरवादी हैं, वे कुरान के प्रति कट्टरवादी होते हुए भी आधुनिकता से बच नहीं पा रहे हैं। वे अपने कल्पनाप्रसूत जिहाद के आवेग में कुरान को भी यथार्थ रूप में नहीं समझ पा रहे हैं। वे केवल क्रूरतापूर्वक हिंसा और रक्तपात को ही ईश्वरीय आदेश मानकर सम्पूर्ण संसार को आतंकित करने में ही अपनी जन्नत समझ रहे हैं। कथित हिन्दू वेद, शास्त्रों व ईश्वर के नाम पर मूर्तिपूजा, अवतारवाद, छुआछूत, घृणा, नारी-शोषण आदि पापों को शताब्दियों से ढोकर वैदिक सत्य सनातन धर्म का नाश करते रहे हैं।

वेद के स्थान पर नाना कल्पित ग्रन्थ, कथित धर्मगुरु व अवतारों की धारणा से वैदिक धर्म व संस्कृति का भयंकर विकृत रूप प्रचलित हो गया। हिन्दुओं में ईश्वर की स्थिति सर्वाधिक हास्यास्पद, विकृत, मूर्खतापूर्ण व भयंकर है। यहाँ कोई भी चालाक व्यक्ति स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित करके नादान जनता को ठग सकता है। मनुष्य ही नहीं, अपितु पशु, पक्षी, सरीसृप आदि भी इस अभागे भारत में ईश्वर के अवतार मान लिए गये। आज ईश्वर व धर्म को मात्र आस्था व विश्वास का विषय मान लिया है, इस कारण करोड़ों लोगों की आस्थाएँ परस्पर टकराती रही हैं, एक-दूसरे का खून बहाती रही हैं। इस संसार में जितना रक्त ईश्वर व धर्म के नाम पर बहा है, उतना कदाचित् ही अन्य कारणों से बहा हो। अस्तु।

* * * * *

ईश्वर के अस्तित्व की वैज्ञानिकता

अब हम ईश्वर तत्त्व पर निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं। हम संसार के समस्त ईश्वरवादियों से पूछना चाहते हैं कि क्या ईश्वर नाम का कोई पदार्थ इस सृष्टि में विद्यमान है भी वा नहीं? जैसे कोई अज्ञानी व्यक्ति भी सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, तारे, आकाशगंगाओं, वनस्पति एवं प्राणियों के अस्तित्व पर कोई शंका नहीं करेगा, क्या वैसे ही इन सब वास्तविक पदार्थों के मूल निर्माता व संचालक ईश्वर तत्त्व पर सभी ईश्वरवादी शंका वा सन्देह से रहित हैं? क्या संसार के विभिन्न पदार्थों का अस्तित्व व स्वरूप किसी की आस्था व विश्वास पर निर्भर करता है? यदि नहीं, तब इन पदार्थों का निर्माता माना जाने वाला ईश्वर क्यों किसी की आस्था व विश्वास के आश्रय पर निर्भर है? हमारी आस्था न होने से क्या ईश्वर नहीं रहेगा?

हमारी आस्था से संसार का कोई छोटे से छोटा पदार्थ भी न तो बन सकता है और न आस्था के समाप्त होने से किसी पदार्थ की सत्ता नष्ट हो सकती है, तब हमारी आस्थाओं से ईश्वर क्योंकर बन सकता है और क्यों हमारी आस्था समाप्त होने से ईश्वर मिट सकता है? क्या हमारी आस्था से सृष्टि के किसी भी पदार्थ का स्वरूप बदल सकता है? यदि नहीं, तो क्यों हम अपनी-2 आस्थाओं के कारण ईश्वर के रूप बदलने की बात कहते हैं? संसार की सभी भौतिक क्रियाओं के विषय में कहीं किसी का विरोध नहीं, कहीं आस्था या विश्वास की बैसाखी की

आवश्यकता नहीं, तब क्यों ईश्वर को ऐसा दुर्बल व असहाय बना दिया, जो हमारी आस्थाओं में बँटा हुआ मानव और मानव के मध्य विरोध, हिंसा व द्वेष को बढ़ावा दे रहा है।

हम सूर्य को एक मान सकते हैं, पृथिवी आदि लोकों एवं अपने-2 शरीरों को एक समान मानकर आधुनिक भौतिक विद्याओं को मिलजुल कर पढ़ व पढ़ा सकते हैं, तब हम ईश्वर और उसके नियमों को एक समान मानकर परस्पर मिलजुल कर क्यों नहीं रह सकते? हम ईश्वर की बनाई हुई सृष्टि एवं उसके नियमों पर बिना किसी पूर्वाग्रह के प्रेमपूर्वक संवाद व तर्क-वितर्क करते हैं, तब क्यों इस सृष्टि के रचयिता ईश्वर तत्त्व पर किसी चर्चा वा तर्क से घबराते हैं? क्यों किंचित् मतभेद होने मात्र से फतवे जारी करते हैं और क्यों आगजनी वा हिंसा पर उतारू हो जाते हैं? क्या सृष्टि के निर्माता ईश्वर तत्त्व की सत्ता किसी की शंका व तर्क मात्र से हिल जायेगी अथवा मिट जायेगी?

यदि ईश्वर तर्क, विज्ञान वा विरोधी पक्ष की आस्था व विश्वास तथा अपने पक्ष की अनास्था व अविश्वास से मिट जाता है, तब ऐसे ईश्वर का मूल्य ही क्या है? ऐसे परजीवी, दुर्बल व असहाय ईश्वर की पूजा करने से क्या लाभ है? उसे क्यों माना जाये? क्यों उस कल्पित ईश्वर और उसके नाम से प्रचलित कल्पित धर्मों में व्यर्थ माथापच्ची करके धन, समय व श्रम का अपव्यय किया जाये?

* * * * *

ईश्वरप्रसूत भौतिकी के नियम

मेरे प्रबुद्ध पाठकगण! जरा विचारें कि यदि ईश्वर नाम की कोई सत्ता वास्तव में संसार में विद्यमान है, तो वह हमारे विश्वास व आस्थाओं के सहारे जीवित नहीं रहेगी। वह सत्ता निरपेक्ष रूप से यथार्थ विज्ञान के द्वारा जानने योग्य भी होगी। उसका एक निश्चित स्वरूप होगा, उसके निश्चित नियम होंगे। ईश्वर के भौतिक नियमों के विषय में रिचर्ड पी. फेनमैन का कथन है—

"We can imagine that this complicated array of moving things which constitutes 'the world' is something like a great chess game being played by the gods, and we are observers of the game. We do not know what the rules of the games are, all we are allowed to do is to watch the playing. Of course, if we watch long enough, we may eventually catch on to a few rules. The rules of the game are what we mean by fundamental physics."

(Lectures on Physics, Pg. 13)

इसका आशय यह है कि यह संसार निश्चित नियमों से बना व चल रहा है। वे नियम ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं और वही उनको लागू करके संसार को बनाता व चलाता है। वैज्ञानिक उन असंख्य नियमों में से कुछ को जान भर सकते हैं, उन्हें बना वा लागू नहीं कर सकते। यहाँ फेनमैन ने एक भारी भूल अवश्य कर दी, जो 'गोड' के स्थान पर 'गोड्स' लिख

दिया। यदि नियम बनाने वाले अनेक 'गोड्स' होंगे, तो उन नियमों में सामंजस्य नहीं बैठेगा। सभी 'गोड्स' को समन्वित व नियन्त्रित करने वाले किसी 'सुप्रीम गोड' की सत्ता अवश्य माननी होगी और भौतिकी के मूलभूत नियम बनाने वाला एक ही 'गोड' होगा।

ध्यान रहे कि यह 'गोड' बाइबिल वाला 'गोड' नहीं है, बल्कि ऐसा ईश्वर है, जिसका स्वरूप वेदादि शास्त्रों में वर्णित है। इसके नियम सर्वत्र कार्य कर रहे हैं। सब कुछ नियमबद्ध हो रहा है। भौतिकी में अनेक स्थिरांक सर्वविदित हैं, इनकी स्थिरता ही बताती है कि किसी ने सृष्टि को पूर्ण रूप से नियमबद्ध बनाया है। सभी कणों व लोकों की दूरी व गतियाँ, उनके बल, द्रव्यमान, आवेश आदि सब कुछ स्थिर हैं। यदृच्छया में कभी स्थिरता नहीं हो सकती। यदि इनमें से कोई एक भी स्थिरांक किञ्चित् भी परिवर्तित हो जाए, तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अस्त-व्यस्त हो सकता है। इतने पर भी कोई कहे कि सब यदृच्छया हो रहा है, तो वह व्यक्ति या तो जड़ बुद्धि होगा अथवा वह किसी दुष्ट प्रयोजन के वशीभूत होकर हठी बना हुआ है।

अब हम विचारें कि उस ईश्वर के भौतिक नियम ही मूलभूत भौतिक विज्ञान के नाम से जाने जाते हैं। इसी विज्ञान पर सम्पूर्ण भौतिक विज्ञान, खगोल, रसायन, जीव, वनस्पति, भूगर्भ, प्रौद्योगिकी, मेडिकल साइंस आदि सभी शाखाएँ आश्रित हैं। मूलभूत भौतिकी के बिना संसार में विज्ञान का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। जब ईश्वर के भौतिक नियम, जिनसे इस संसार को जाना जाता है, ब्रह्माण्ड भर के बुद्धिवादी प्राणियों वा मनुष्यों के लिए समान हैं, तब उस ईश्वर को जानने के लिए आवश्यक उसी के बनाये आध्यात्मिक नियम अर्थात् अध्यात्म विज्ञान (जिसे प्रायः धर्म कहा जाता है) भी तो सभी मनुष्यों के लिए समान ही होंगे। आश्चर्य

है कि इस साधारण तर्क को समझने की बुद्धि भी ईश्वरवादियों में नहीं रही, तब निश्चित ही यह उनकी कल्पनाप्रसूत ईश्वरीय धारणा व कल्पित उपासना-पूजा पद्धति का ही फल है, जहाँ सत्य के अन्वेषण की वैज्ञानिक मेधा कहीं पलायन कर गयी है।

ईश्वरवादी वैज्ञानिक केवल रिचर्ड फेनमैन ही नहीं है, अपितु अनेक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते रहे हैं व करते हैं। क्योंकि वर्तमान विज्ञान केवल प्रयोगों, प्रेक्षणों व गणितीय व्याख्याओं के सहारे ही जीता है और यही उसका स्वरूप भी है। इस कारण वह ईश्वर की व्याख्या इनके सहारे तो नहीं कर सकता और न वह इसकी व्याख्या की इच्छा करता है। उधर स्टीफन हॉकिंग ने तो 'ग्रैंड डिज़ाइन' पुस्तक में मानो संसार के सभी ईश्वरवादियों को मूर्ख समझकर निरर्थक व्यंग्य किये हैं। विज्ञान का नाम लेकर स्वयं अवैज्ञानिकता का ही परिचय दिया है। इस पुस्तक से पूर्व उन्हीं की पुस्तकों में वे ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं, फिर मानो अकस्मात् वे भारी खोज करके संसार में घोषणा करते हैं कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता ब्रह्माण्ड में नहीं है।

उधर आज संसार में ऐसा भयंकर पाप प्रवाह चल रहा है कि ईश्वरवादी कहाने वाले भी ऐसा व्यवहार कर रहे हैं, मानो उनके ऊपर ईश्वर नाम की कोई सत्ता न हो, वे अहंकारी मानव स्वयं को ही सर्वोच्च सत्ता की भाँति दिखाने का प्रदर्शन करते देखे जाते हैं। इस कारण हम संसार भर के वैज्ञानिकों (अनीश्वरवादियों व ईश्वरवादियों दोनों) का ही आह्वान करना चाहेंगे कि वे ईश्वर की सत्ता पर खुले मस्तिष्क से विचार करने को उद्यत हो जाएँ। आज अनेक ईश्वरवादी विद्वान् ईश्वरवादी वैज्ञानिकों के प्रमाण देते देखे वा सुने जाते हैं, परन्तु हम ईश्वरीय सत्ता का प्रमाण किसी वैज्ञानिक से लेना आवश्यक नहीं समझते।

अब वह समय आयेगा, जब वर्तमान वैज्ञानिक हम वैदिक वैज्ञानिकों को प्रमाण मानना प्रारम्भ करके नये वैज्ञानिक युग का सूत्रपात करेंगे अर्थात् हमारे साथ मिलकर कार्य करेंगे। हम आज विश्वभर के समस्त प्रबुद्ध समाज से घोषणापूर्वक कहना चाहेंगे कि यदि ईश्वर नहीं है, तो सब झंझट छोड़कर नितान्त नास्तिक व स्वच्छन्द बन जाएँ और यदि ईश्वर सिद्ध होता है, तो उसकी आज्ञा में चलकर मर्यादित जीवन जीते हुए संसार को सुखी बनाने का प्रयत्न करें, क्योंकि सम्पूर्ण संसार उसी ईश्वर की रचना है और इस कारण सभी मानव ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र परस्पर गोत्री भाई-2 न सही, परन्तु भावनात्मक रूप में भाई-2 हैं।

* * * * *

'क्यों', 'किसने' एवं 'किसके लिए' प्रश्न नहीं?

अब हम ईश्वर के अस्तित्व पर नये सिरे से विचार करते हैं—

हमने अब तक वैज्ञानिकों से जो भी चर्चा सृष्टि विज्ञान पर की है, उससे यह विचार सामने आता है कि वैज्ञानिक '**क्यों**' प्रश्न का उत्तर नहीं देते, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह विज्ञान का विषय नहीं है। हम संसार में नाना स्तरों पर कुछ प्रश्नवाचक शब्दों का सामना करते हैं—

1. क्यों
2. किसने
3. किसके लिए
4. क्या
5. कैसे आदि

इन प्रश्नों में से '**क्या**', '**कैसे**' के उत्तर के विषय में वर्तमान विज्ञान विचार करने का प्रयास करता प्रतीत हो रहा है। यद्यपि इन दोनों ही प्रश्नों का पूर्ण समाधान तो विज्ञान के पास नहीं है, परन्तु प्रयास अवश्य ईमानदारी से हो रहा है। '**क्यों**', '**किसने**' एवं '**किसके लिए**' इन तीन प्रश्नों के विषय में विचार करना भी आधुनिक विज्ञान के लिए किंचिदपि रुचि का विषय नहीं है। अब हम इन प्रश्नों के आशय पर क्रमशः विचार करते हैं—

1. क्यों— यह प्रश्न प्रयोजन की खोज के लिए प्रेरित करता है। हम

नि:सन्देह सारे जीवन नाना प्रकार के कर्मों को करते एवं नाना द्रव्यों का संग्रह करते हैं। इन सबका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। कोई भी बुद्धिमान् प्राणी किसी न किसी प्रयोजन हेतु ही कोई प्रवृत्ति रखता है। मूर्ख मनुष्य भले ही निष्प्रयोजन कर्मों में प्रवृत्त रहता हो, बुद्धिमान् तो कदापि ऐसा नहीं करेगा। संसार पर विचारें कि यह क्यों बना व क्यों संचालित हो रहा है? इसकी प्रत्येक गतिविधि का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य है। 'क्यों' प्रश्न की उपेक्षा करने वाला कोई वैज्ञानिक क्या यह मानता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निष्प्रयोजन रचना है?

हमारे विचार से प्रत्येक मनुष्य को सर्वप्रथम 'क्यों' प्रश्न का उत्तर ही खोजने का यत्न करना चाहिए। जिस प्रकार वह कोई कर्म करने से पूर्व उसका प्रयोजन जानता है, उसी प्रकार इस सृष्टि के उत्पन्न होने और किसी शरीरधारी के जन्म लेने का प्रयोजन जानने का भी प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान विज्ञान के इस प्रश्न से दूर रहने से ही आज वह अनेकों अनुसन्धान करते हुए भी उनके प्रयोजन व दुष्प्रभावों पर विचार नहीं करता है। इसी कारण मानव को अपने विविध क्रियाकलापों, यहाँ तक कि जीने के भी प्रयोजन का ज्ञान नहीं होने से वह भोगों की अति तृष्णा में भटकता हुआ अशान्ति व दु:खों के जाल में फँसता जा रहा है।

2. किसने— यह प्रश्न '**क्यों**' से जुड़ा हुआ है। कोई कार्य किस प्रयोजन के लिए हो रहा है, इसके साथ ही इससे जुड़ा हुआ अन्य प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि उस कार्य को किसने सम्पन्न किया अथवा कौन सम्पन्न कर रहा है अर्थात् उसका प्रायोजक कौन है? इस सृष्टि की प्रत्येक क्रिया का एक निश्चित प्रयोजन है, साथ ही उसका प्रायोजक कोई चेतन तत्त्व है। कोई जड़ पदार्थ किसी क्रिया का प्रायोजक नहीं होता। जड़ पदार्थ प्रयोजन की सामग्री तो बन सकता है, परन्तु उसका

कर्त्ता अर्थात् प्रायोजक नहीं। चेतन तत्त्व ही जड़ तत्त्व पर साम्राज्य व नियन्त्रण करता है। चेतन तत्त्व स्वतन्त्र होने से कर्त्तापन का अधिकारी है, जबकि जड़ पदार्थ स्वतन्त्र नहीं होने से कर्तृत्व सम्पन्न नहीं हो सकता।

3. किसके लिए— यह प्रश्न इस बात का विचार करता है कि किसी कर्त्ता ने कोई कार्य किया वा कर रहा है, तो क्या वह कार्य स्वयं के लिए किया वा कर रहा है अथवा अन्य किसी चेतन तत्त्व के लिए कर रहा है ? यहाँ कोई उपभोक्ता होगा और उपभोक्ता भी चेतन ही होता है। जड़ पदार्थ कभी भी न तो स्वयं का उपभोग कर सकता है और न वह दूसरे जड़ पदार्थों का उपभोग कर सकता है। सृष्टि के सभी जड़ पदार्थ कभी भी स्वयं के लिए नहीं होते। सूर्यादि तारे, ग्रह, उपग्रह, हवा, आकाश, जल, वनस्पति सभी पदार्थ किसी दूसरे के उपभोग हेतु हैं, स्वयं के लिए नहीं। वे जिसके लिए भी हैं, वह पदार्थ चेतन ही होगा, जड़ कदापि नहीं।

4. क्या— यह प्रश्न पदार्थ के स्वरूप की पूर्णत: व्याख्या करता है। जगत् क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? मूल कण क्या हैं ? ऊर्जा व द्रव्य क्या है ? बल क्या है ? इन सब प्रश्नों का समाधान इस क्षेत्र का विषय है। वर्तमान विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र दोनों इस प्रश्न का उत्तर देने का यथासम्भव प्रयास करते हैं। इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। वर्तमान विज्ञान इस प्रश्न का सम्पूर्ण उत्तर देने में समर्थ नहीं है। जहाँ विज्ञान असमर्थ हो जाता है, वहाँ वैदिक विज्ञान किंवा दर्शन शास्त्र इसका उत्तर देता है।

5. कैसे— कोई भी क्रिया कैसे सम्पन्न होती है ? जगत् कैसे बना है ? द्रव्य व ऊर्जा कैसे व्यवहार करते हैं ? बल कैसे कार्य करता है ? इन सभी

प्रश्नों का समाधान इस क्षेत्र का विषय है। वर्तमान विज्ञान इस क्षेत्र में कार्य करता है, परन्तु इसका भी पूर्ण सन्तोषप्रद उत्तर इसके पास नहीं है। अन्य प्रश्नों के उत्तर जाने बिना इसका सन्तोषप्रद उत्तर मिल भी नहीं सकता।

इन पाँच प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य कुछ प्रश्न भी हैं, जिनका समायोजन इन पाँचों प्रश्नों में ही प्रायः हो सकता है।

* * * * *

बिग-बैंग सिद्धान्त के सन्दर्भ में

अब हम सृष्टि उत्पत्ति के सन्दर्भ में क्यों व किसने प्रश्नों पर क्रमश: विचार करते हैं—

वर्तमान में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में सर्वाधिक प्रचलित बिग-बैंग सिद्धान्त में अनेक प्रश्न निम्नानुसार उपस्थित होते हैं—

1. अनन्त सघन व अनन्त तापयुक्त शून्य आयतन वाले पदार्थ में अकस्मात् विस्फोट क्यों हुआ तथा इसे किसने किया?
2. यदि स्टीवन वेनबर्ग के बिग-बैंग पर विचार करें, तो वहाँ भी क्यों व किसने प्रश्न उपस्थित होंगे ही। यदि चेतन नियन्त्रक सत्ता को स्वीकार किया जाये, तब तो कहा जा सकता है कि उसने किया और बुद्धिमत्तापूर्ण जीवों के उपयोग में आने योग्य सृष्टि का निर्माण करने के लिए विस्फोट किया, परन्तु अनीश्वरवादी इसका उत्तर कभी नहीं दे सकते। एक वैज्ञानिक ने मुझसे पूछा कि यदि ईश्वर को मानें, तो भी यह प्रश्न उठेगा कि ईश्वर ने अकस्मात् आज से लगभग 13.6 अरब वर्ष पूर्व ही विस्फोट क्यों किया? तो इसके उत्तर में ईश्वरवादी तो उचित उत्तर दे सकता है कि चेतन तत्त्व इच्छा व ज्ञान शक्ति से सम्पन्न होता है। वह किसी कार्य का समय व प्रयोजन अपनी बुद्धि और विवेक से निश्चित कर सकता है। कोई चिड़िया पेड़ से अमुक समय पर क्यों उड़ी? मैं अमुक समय पर

अमुक कार्य क्यों करने बैठा? मैं भूख न लगने पर भोजन करूँ वा नहीं करूँ, यह मेरी इच्छा व विवेक का विषय है, यहाँ 'क्यों' प्रश्न उचित नहीं है, परन्तु वृक्ष से पत्ता क्यों गिरा? बादल अभी क्यों बरसने लगे? पानी नीचे की ओर क्यों बह रहा है? इन प्रश्नों का उत्तर अवश्य देने योग्य है। यहाँ इच्छा एवं विवेक नहीं है। इस कारण ईश्वरवादी बिग-बैंग के समय व प्रयोजन के औचित्य को सिद्ध कर सकता है, अनीश्वरवादी कभी नहीं। मेरे यह कहने का प्रयोजन यह नहीं है कि ईश्वर के द्वारा बिग-बैंग सम्भव है अर्थात् यदि बिग-बैंग थ्योरिस्ट ईश्वर की सत्ता को मान लें, तो बिग-बैंग सिद्धान्त सत्य हो सकता है? नहीं, ईश्वर तत्त्व भी वर्तमान वैज्ञानिकों वाले बिग-बैंग को सम्पन्न नहीं कर सकता है। बिग-बैंग कैसे होता है? इसका समाधान ईश्वरवाद से भी नहीं मिल सकता है। ईश्वर भी अपने नियमों अर्थात् मूलभूत भौतिकी के नियमों के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। वस्तुतः बिग बैंग मॉडल में आधुनिक भौतिकी के ही अनेक स्थापित सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है, जिनकी चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है। हाँ, यदि किसी लोक में विस्फोट माना जाये, वह लोक भी अनादि न माना जाये, साथ ही भौतिकी के स्थापित नियमों का उल्लंघन न हो, तब ईश्वर द्वारा विस्फोट किया जा सकता है, परन्तु उस एक विस्फोट से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्माण होना सम्भव नहीं है। शून्य से ईश्वर भी सृष्टि की रचना नहीं कर सकता है। सृष्टि रचना के लिए अनादि जड़ उपादान कारण की आवश्यकता अवश्य होती है, परन्तु जड़ पदार्थ में स्वयं गति व क्रिया नहीं होती, इस कारण इन्हें उत्पन्न करने में ईश्वर की भूमिका अवश्य होती है। अनन्त पदार्थ (अनन्त ताप, अनन्त द्रव्यमान) से सान्त ऊर्जा व सान्त

द्रव्यमान वाले ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति क्यों होती है? इसका उत्तर अनीश्वरवादी नहीं दे सकता, जबकि ईश्वरवादी इसका उत्तर देते हुए कह सकता है कि ईश्वर अपने प्रयोजनानुसार अनन्त पदार्थ में से कुछ पदार्थ को उपयोग में लेकर ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है। जिस प्रकार लोक में कोई व्यक्ति पदार्थ विशेष से कुछ भाग लेकर अपनी इच्छा वा प्रयोजनानुसार किसी वस्तु विशेष का निर्माण करने के लिए स्वतन्त्र है, उसकी इच्छा वा प्रयोजन पर कोई अन्य व्यक्ति प्रश्न उपस्थित नहीं कर सकता, उसी प्रकार अनन्त पदार्थ से कुछ पदार्थ लेकर परमात्मा सान्त द्रव्यमान व ऊर्जा वाले ब्रह्माण्ड की रचना करता है। हम इस पर यह प्रश्न नहीं कर सकते कि उसने अनन्त पदार्थ के शेष भाग का उपयोग क्यों नहीं किया अथवा अनन्त द्रव्यमान वा ऊर्जा से युक्त ब्रह्माण्ड क्यों नहीं बनाया? वैसे अभी तो यह प्रश्न भी अनुत्तरित है कि ब्रह्माण्ड सान्त है वा अनन्त। हमारी दृष्टि में ब्रह्माण्ड ईश्वर की अपेक्षा सान्त तथा हमारी अपेक्षा अनन्त है। हम जिस पदार्थ को ऐसा समझते हैं कि वह ब्रह्माण्ड बनाने में काम में नहीं आया, वह हमारी अल्पज्ञता ही है। वस्तुतः जो पदार्थ ऐसा है, वह भी ब्रह्माण्ड के संचालन आदि में परोक्ष भूमिका निभाता है। वह पदार्थ ही प्राण, मन, छन्द व मूल प्रकृति के रूप में विद्यमान रहता है। दूसरी बात यह भी है कि प्रारम्भ में द्रव्यमान, ऊर्जा जैसे लक्षण विद्यमान ही नहीं होते।

3. दूर तक बिखरता हुआ पदार्थ संघनित होना कैसे प्रारम्भ करता है? अनीश्वरवादी दूर भागते हुए पदार्थ के संघनित होने का यथार्थ कारण नहीं बता सकता, परन्तु ईश्वरवादी इसका इस प्रकार समाधान कर सकता है कि दूर भागते हुए पदार्थ को ईश्वर सृष्टि सृजन हेतु उससे

सूक्ष्म तरंग रूप शक्तिशाली पदार्थ को उत्पन्न करके उसके द्वारा फैलते पदार्थ को रोककर संघनित कर सकता है अर्थात् संघनन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकता है।

इस प्रकार यदि कोई बिग बैंग द्वारा सृष्टि का उत्पन्न होना माने, तब भी इसमें ईश्वर की सत्ता को अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा।

* * * * *

अनन्त ब्रह्माण्ड (इटर्नल यूनिवर्स)

इस मत पर यह जान लेना अनिवार्य है कि कोई भी कण वा क्वाण्टा, जिसमें किसी भी प्रकार का बल अथवा क्रिया विद्यमान होती है, वह अनादि नहीं हो सकता। इसके साथ ही यह भी तथ्य है कि जो पदार्थ किसी अन्य सूक्ष्मतर पदार्थ के संयोग से बना है, वह अनादि नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि किसी भी संयुक्त वा निर्मित पदार्थ में उसके विभिन्न अवयवों के मध्य कार्यरत बल एवं उनके मध्य सूक्ष्म रश्मियों का आदान-प्रदान कभी अनादि नहीं हो सकता। यह पदार्थ की स्वाभाविक अवस्था कभी भी नहीं कही जा सकती। इन कणों के सूक्ष्म अवयवों के मध्य न केवल बल व गति का अस्तित्व होता है, अपितु इनमें एक निश्चित प्रयोजन भी छिपा रहता है। अब हम सृष्टि के अनादित्व पर कुछ अन्य ढंग से विचार करते हैं—

क्या गति अनादि हो सकती है?

'सृष्टि' शब्द का अर्थ है— 'नाना पदार्थों के बुद्धिपूर्वक मेल से नवीन-2 पदार्थों की उत्पत्ति का होना'। इस मेल की क्रिया में बल और गति का होना अनिवार्य है। प्रश्न यह है कि क्या जड़ पदार्थ में स्वयं बल अथवा गति का होना सम्भव है? इस सृष्टि में जो भी बल व गति दिखाई दे रहे हैं, क्या वे मूलतः उसके अपने ही हैं? इस विषय में महर्षि वेदव्यास का कथन है—

प्रवृत्तेश्च (अनुपपत्तेः) (ब्र.सू.2.2.2)

अर्थात् जड़ पदार्थ में स्वत: कोई क्रिया वा गति आदि नहीं हो सकती। उसमें गति वा क्रिया को उत्पन्न करने वाला कोई चेतन तत्त्व अवश्य होता है। हम अपने चतुर्दिक् नाना प्रकार की गतियाँ निरन्तर देखते हैं, जिनमें से किन्हीं वस्तुओं को गति देने वाला चालक दिखाई देता है, तो किन्हीं गतियों का चालक दिखाई नहीं देता। अब हम विचार करते हैं कि कौन-2 से पदार्थ हैं, जिनका चालक दिखाई नहीं देता और कौन-2 से पदार्थ ऐसे हैं, जिनका चालक दिखाई देता है, किंवा दिखाई दे सकता है। हम बस, रेलगाड़ी, कार आदि वाहनों के चालक को प्रत्यक्ष देखते हैं, उनकी इच्छा वा प्रयत्न आदि क्रियाओं को अनुभव करते हैं।

हम वाहन की गति को प्रारम्भ करने वाले चेतन वाहनचालक को देखते हैं, परन्तु वाहन के इंजन में हो रही क्रियाओं को मात्र ईंधन से उत्पन्न मान लेते हैं। ईंधन वा उससे उत्पन्न ऊर्जा वाहन को कैसे गति देती है ? विद्युत् बड़े-2 यन्त्रों को कैसे चलाती है ? विद्युत् चुम्बकीय बल कैसे कार्य करते हैं ? ऊर्जा व बल क्या हैं ? इन प्रश्नों का हमें स्पष्ट ज्ञान नहीं है। वर्तमान वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं। रिचर्ड पी. फेनमैन लिखते हैं—

"It is important to realize that in physics today, we have no knowledge of what energy is."

(Lectures on Physics, Pg. 40)

"If you insist upon a precise definition of force, you will never get it."

(id. Pg. 147)

"Why things remains in motion when they are moving or why there is a law of gravitation was, of course not

known."

(id. Pg.15)

इससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक भौतिक विज्ञान बल एवं ऊर्जा को ठीक-2 नहीं समझ पा रहा है। वे कैसे कार्य करते हैं, यह अज्ञात है। सूक्ष्म परमाणु, अणु अथवा तरंगें कैसे सतत चल रही हैं? यह भी सर्वथा अज्ञात है। फेनमैन की यह स्पष्ट स्वीकारोक्ति सराहनीय है। वस्तुतः वर्तमान विज्ञान की कार्यशैली की एक सीमा होती है।

* * * * *

विज्ञान क्या है?

साइंस शब्द का अर्थ करते हुए चैम्बर्स डिक्शनरी में लिखा है—

"Knowledge ascertained by observation and experiment, critically tested, systematized and brought under general principles, esp in relation to the physical world, a depart-ment or a branch of such knowledge or study."

'ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर डिक्शनरी' के इंडियन एडिशन में साइंस का अर्थ इस प्रकार किया है—

"Organized knowledge esp when obtained by observation and testing of facts, about the physical world, natural laws."

इन दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट है कि भौतिक जगत् का जो ज्ञान प्रयोगों, प्रेक्षणों और विविध परीक्षणों से सुपरीक्षित एवं व्यवस्थित होता है, वह आधुनिक विज्ञान की सीमा में माना जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि हमारे पास परीक्षण के जितने अधिक साधन उपलब्ध हों, हमारा विज्ञान उतना अधिक परीक्षण करके सृष्टि के पदार्थों को जान सकता है। अपने तकनीकी साधनों की सीमा के बाहर विद्यमान कोई भी पदार्थ चाहे कितना भी यथार्थ क्यों न हो, उसे विज्ञान स्वीकार नहीं कर सकता।

पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों को आइजक न्यूटन से पूर्व गुरुत्वाकर्षण

बल के बारे में नहीं पता था, गैलीलियो एवं कॉपरनिकस के पूर्व पृथिवी के आकार व परिक्रमण का ज्ञान नहीं था, तब तक उनके लिए गुरुत्वाकर्षण बल, पृथिवी का गोलाकार होना तथा उसका सूर्य के चारों ओर परिक्रमण करना आदि विषय विज्ञान के क्षेत्र में नहीं आते थे अर्थात् ये सभी तथ्य कल्पना मात्र थे। परन्तु जब इन वैज्ञानिकों ने इन पर प्रेक्षण व प्रयोग किये, तो ये सभी तथ्य वैज्ञानिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। आज संसार में जो भी नये-2 आविष्कार हो रहे हैं, वे अब से पूर्व कल्पना के विषय थे, परन्तु अब विज्ञान व तकनीक बन गये। इसी कारण कहा जाता है कि विज्ञान परिवर्तनशील है।

इसे वर्तमान विज्ञान की विशेषता कहें वा अपूर्णता, यह वैज्ञानिकों को स्वयं विचारना चाहिए। मैं सूर्य को देख पाऊँ वा नहीं, इससे सूर्य और उसके विज्ञान में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा, तब मैं इसे अपने प्रेक्षणों व प्रयोगों की सीमा में कठोरतापूर्वक बाँधने का हठ क्यों करूँ? स्थूल रूप से ज्ञान के भी दो क्षेत्र हैं। एक वह है, जिसके प्रेक्षण व प्रयोग की तकनीक वर्तमान में उपलब्ध है और दूसरा वह है, जिसके प्रयोग व परीक्षण की तकनीक मनुष्य द्वारा विकसित किये जाने की सम्भावना हो सकती है। इसके अतिरिक्त ज्ञान का एक क्षेत्र ऐसा भी है, जिसका प्रयोग व परीक्षण किसी तकनीक से सम्भव नहीं, बल्कि जिसे योग साधनाजन्य दिव्यदृष्टि से ही जाना जा सकता है। इन तीनों प्रकार के ज्ञान में उचित तर्क का होना अनिवार्य है। जो बात सामान्य सुतर्क तथा ऊहा की दृष्टि से ही असम्भव प्रतीत हो, वह उपर्युक्त तीनों प्रकार के ज्ञान में से एक भी ज्ञान के क्षेत्र में नहीं आयेगी।

यहाँ ऊहा व तर्क का यथार्थ आशय भी गम्भीर विचारक ही जान सकते हैं, सामान्य व्यक्ति नहीं। जिस-2 व्यक्ति की प्रतिभा व साधना

जितनी–2 अधिक होगी, उस उसकी तर्क व ऊहा शक्ति उतनी–2 अधिक यथार्थ होगी। इस कारण वर्तमान विज्ञान को अपने क्षेत्र के बाहर जाकर सुतर्क व ऊहा की दृष्टि से भी विचारना चाहिए। यदि कोई सज्जन यह कहे कि सुतर्क व ऊहा का विज्ञान के क्षेत्र में कोई महत्त्व नहीं है, तो मैं उस सज्जन को कहना चाहूँगा कि विज्ञान का जन्म सुतर्क एवं ऊहा रूप दर्शन से ही होता है और जहाँ विज्ञान का सामर्थ्य वा क्षेत्र समाप्त हो जाता है, वहाँ उसकी समाप्ति सुतर्क व ऊहा रूप दर्शन में ही होती है, किंवा विज्ञान की चरम सीमा से परे दर्शन की सीमा पुनः प्रारम्भ होती है। हम इस बिन्दु को निम्न प्रकार समझने का प्रयत्न करते हैं—

* * * * *

दर्शन व वैदिक विज्ञान

जब न्यूटन ने सेब के फल को वृक्ष से नीचे गिरते देखा था, उस समय उसके मन में इस ऊहा व तर्क की उत्पत्ति हुई कि सेब नीचे ही क्यों गिरा? उनके इसी विचार से गुरुत्वाकर्षण की खोज और एतदर्थ किये प्रेक्षणों, परीक्षणों वा प्रयोगों की नींव रखी गयी। अनेक लोग सेब गिरते देखते हैं वा उस समय भी देखते थे, परन्तु यह विचार न्यूटन के मस्तिष्क में ही आया, क्योंकि वे तर्क व ऊहा-सम्पन्न व्यक्ति थे। यह बात यूरोप देशों के सन्दर्भ में ही माननी चाहिए, क्योंकि वैदिक वाङ्मय में तो गुरुत्वाकर्षण बल का उल्लेख सदा से है। दर्शन को आंग्ल भाषा में फिलॉसफी कहा जाता है, जिसकी परिभाषा करते हुए चैम्बर्स डिक्शनरी में लिखा है—

"In pursuit of wisdom and knowledge, investigation contemplation of the nature of being knowledge of the causes and laws of all things, the principles underlying any sphere of knowledge, reasoning."

'ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर डिक्शनरी' में इसे इस प्रकार परिभाषित किया है—

"Search for knowledge and understanding of the nature and meaning of the universe and human life."

अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न वस्तुओं, उनके कारण तथा

कार्य करने के सिद्धान्त आदि को तर्क व ऊहा के आधार पर जानने का प्रयत्न करना ही दर्शन कहलाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि विज्ञान व दर्शन दोनों का उद्देश्य ब्रह्माण्ड को जानने का प्रयास करना है। दोनों की प्रक्रियाओं में कुछ भेद अवश्य है, परन्तु दोनों का उद्देश्य समान है। विज्ञान का क्षेत्र मानव तकनीक के सामर्थ्य तक सीमित है और दर्शन का क्षेत्र चिन्तन, मनन व ऊहा की सीमाओं तक फैला है। कहीं विज्ञान प्रेक्षणादि कर्मों की विद्यमानता में भी मूल कारण वा नियमादि विषयों में भ्रमित हो सकता है, तो कहीं दर्शन भी दार्शनिकों (विशेषकर परम सिद्ध योगियों के अतिरिक्त) की कल्पनाओं के वेग में बहकर भ्रान्त हो सकता है। हमें दोनों ही विधाओं का विवेकसम्मत उपयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब हम पाठकों के समक्ष विज्ञान व दर्शन की सीमा और समन्वय को दर्शाते हुए सृष्टि के एक नियम पर विचार करते हैं—

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि एक धनावेशित वस्तु दूसरी ऋणावेशित वस्तु को क्यों आकर्षित करती है? तब इस ज्ञान की प्रक्रिया में सर्वप्रथम हमें यह अनुभव होता है कि विपरीत आवेश वाली कोई भी वस्तु एक-दूसरे को आकर्षित करती है। यहाँ आकर्षण बल है, तो उसका कारण भी होगा, यह विचार करना दर्शन का क्षेत्र है। कोई दो वस्तुएँ परस्पर निकट आ रही हैं, तब उनके मध्य कोई आकर्षण बल कार्य कर रहा होगा, यह जानना भी दर्शन का क्षेत्र है। अब उन आकर्षित हो रही वस्तुओं पर विपरीत विद्युत् आवेश है, यह बताना विज्ञान का कार्य है। यह आवेश कैसे काम करता है? यह बताना भी विज्ञान का कार्य है। वर्तमान विज्ञान ने जाना कि जब दो विपरीत आवेश वाले कण निकट

आते हैं, तब उनके मध्य वर्चुअल फोटोन्स उत्पन्न और संचरित होने लगते हैं। ये पार्टिकल्स (फोटोन्स) ही आकर्षण बल का कारण बनते हैं। ये पार्टिकल्स वर्तमान विज्ञान के मत में उन दोनों कणों के मध्य विद्यमान स्पेस को संकुचित करके उन कणों को परस्पर निकट लाने का कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया को जानना विज्ञान का काम है। कदाचित् वर्तमान विज्ञान की सीमा यहाँ समाप्त हो जाती है। इसके आगे दर्शन वा वैदिक विज्ञान की सीमा प्रारम्भ होती है।

जब मैं पूछता हूँ कि धन व ऋण विद्युत् आवेश युक्त कणों के परस्पर निकट आते ही वर्चुअल पार्टिकल्स कहाँ से व क्यों प्रकट हो जाते हैं? तब वैज्ञानिक उत्तर देते हैं कि इसका उत्तर हम नहीं जानते। जहाँ वर्तमान विज्ञान के पास उत्तर नहीं मिलता, वहाँ वैदिक विज्ञान वा दर्शन उत्तर देता है। यह उत्तर वैदिक ऋषियों वा वेद के महान् विज्ञान से मिलेगा, जिसकी हमने 'वेदविज्ञान-आलोक' ग्रन्थ में विस्तृत विवेचना की है। यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि वर्तमान विज्ञान किसी बल के कार्य करने की प्रक्रिया को बतलाता है, जबकि वैदिक विज्ञान किंवा दर्शन उसके आगे जाकर यह बतलाते हैं कि वह बल की प्रक्रिया क्यों हो रही है और मूल प्रेरक बल क्या है? वहाँ हम यह सिद्ध करेंगे कि सभी जड़ बलों का मूल प्रेरक बल चेतन परमात्म तत्त्व का बल है। यहाँ वर्तमान विज्ञान न तो हमारे प्रश्नों का उत्तर देता है और न ईश्वर तत्त्व के मूल प्रेरक बल की सत्ता को ही स्वीकार करता है। यह दुराग्रह किसी वैज्ञानिक के लिए उचित नहीं है। उसे या तो समस्याओं का समाधान करना चाहिए अथवा वैदिक वैज्ञानिकों से समाधान पूछना चाहिए।

यहाँ हम चर्चा कर रहे थे कि ब्रह्माण्ड में आधुनिक विज्ञान द्वारा माने व जाने जाने वाले मूलकण अनादि नहीं हो सकते और तब उनमें होने

वाली किसी भी प्रकार की क्रिया वा गति भी अनादि नहीं हो सकती। यदि कोई यह हठ करते हुए हमसे कहे कि मान लीजिये मूलकण प्राणादि सूक्ष्म पदार्थ वा प्रकृति रूप सूक्ष्मतम पदार्थ से बने हैं, तब भी उस सूक्ष्म वा सूक्ष्मतम कारण पदार्थ में गति अनादि क्यों नहीं हो सकती? इसके लिए चेतन ईश्वर तत्त्व की आवश्यकता क्यों होती है?

इस विषय पर हम इस प्रकार विचार करते हैं—

इस सृष्टि में जो भी गति एवं बल का अस्तित्व है, वह पदार्थ की सूक्ष्मतम अवस्था तक प्रभावी होता है। पदार्थ के अणुओं में होने वाली कोई भी क्रिया, बल आदि का प्रभाव उसमें विद्यमान आयन्स तक होता है। आयन्स में होने वाली प्रत्येक गति व बल आदि का प्रभाव वा सम्बन्ध इलेक्ट्रॉन्स, प्रोटॉन्स, न्यूट्रॉन्स वा क्वार्क्स व ग्लूऑन्स तक होता है। हमारा विश्वास है कि वर्तमान विज्ञान भी इसे मिथ्या नहीं कहेगा। इन सूक्ष्म कणों की संरचना व स्वरूप के विषय में वर्तमान विज्ञान अनभिज्ञ है, इस कारण इनमें होने वाली गति, क्रिया, बल आदि के प्रभाव की व्यापकता के विषय में भी वह अनभिज्ञ है। यह प्रभाव प्राण, मन व वाक् तत्त्वों तक व्याप्त होता है, जो मूल प्रकृति व ईश्वर में समाप्त हो जाता है। वस्तुतः ईश्वर तत्त्व में कोई क्रिया नहीं होती और प्रकृति में क्रिया ईश्वरीय प्रेरणा से होती है, परन्तु उससे प्रकृति का मूल स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। यह सब ज्ञान वर्तमान विज्ञान वा तकनीक के द्वारा होना सम्भव नहीं है।

गति व बल की व्याप्ति के पश्चात् हम यह भी विचार करें कि इस ब्रह्माण्ड में हो रही प्रत्येक क्रिया अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से हो रही है। समस्त सृष्टि अनायास किसी क्रिया का परिणाम नहीं है, बल्कि प्रत्येक

बल वा क्रिया अत्यन्त व्यवस्थित व विशेष प्रयोजनानुसार हो रही है। मूलकण, क्वाण्टा आदि सूक्ष्म पदार्थ किंवा विभिन्न विशाल लोक-लोकान्तर आदि पदार्थ जड़ होने से न तो बुद्धिमत्तापूर्ण क्रियाएँ कर सकते हैं और न वे अपनी क्रियाओं का प्रयोजन ही समझ सकते हैं।

स्टीफन हॉकिंग जिन्होंने अपनी पुस्तक 'ग्रैंड डिज़ाइन' में ईश्वर की सत्ता को अपने अवैज्ञानिक कुतर्कों के द्वारा नकारने का असफल प्रयास किया है, वहीं शरीर में जीवात्मा की सत्ता को भी अस्वीकार करने का असफल प्रयत्न किया है। वे अपनी पुस्तक में रोबोट एवं परग्रही जीव में भेद भी करते हैं, पुनरपि परग्रही जीव में स्वतन्त्र इच्छा व बुद्धियुक्त आत्मा को नहीं मानते। यही हठ वर्तमान विज्ञान को विनाशकारी भोगवादी मार्ग पर ले जा रहा है। वे लिखते हैं—

"How can one tell if a being has free will? If one encounters an alien, how can one tell if it is just a robot or it has a mind of its own? The behaviour of a robot would be completely determined, unlike that of a being with free will. Thus one could in principle detect a robot as a being whose actions can be predicted. As we said in Chapter 2, this may be impossibly difficult if the being is large and complex. We cannot even solve exactly the equations for three or more particles interacting with each other. Since an alien the size of a human would contain about a thousand trillion trillion particles even if the alien were a robot, it would be impossible to solve the equations and predict what it would do. We would therefore have to say that any complex being has free will- not as a fundamental feature, but as an effective

theory, an admission of our inability to do the calculations that would enable us to predict its actions."

(The Grand Design, Pg. 178)

यहाँ पाठक विचारें कि यदि थाउजेंड ट्रिलियन ट्रिलियन पार्टिकल्स ही बुद्धि व इच्छा की उत्पत्ति का कारण हो सकते हैं, तब क्या रोबोट में इतने कण नहीं होते? वह भी उन्हीं मूलकणों से बना है, जिससे हमारा शरीर बना है। अणुओं के स्तर पर ही भेद है, अन्यथा लगभग परमाणुओं के स्तर पर कोई भेद नहीं है, मूलकण के स्तर पर तो नितान्त समानता है। तब मात्र कणों की संख्या के कारण भेद को कैसे मान लेते हैं और जीव के व्यवहार को केवल इसी आधार पर अज्ञेय बता देते हैं। आज एक मनुष्य अनेकों स्वचालित रोबोट्स का निर्माण कर सकता है, परन्तु क्या अनेकों रोबोट्स मिलकर भी बिना मनुष्य की प्रेरणा व नियन्त्रण के एक मनुष्य तो क्या, स्वयं एक रोबोट का निर्माण भी कर सकते हैं?

इस अवैज्ञानिकता व दम्भपूर्ण पुस्तक में जन्म, मरण, इच्छा आदि को जिस प्रकार समझाया है, वह वास्तव में हॉकिंग साहब को वैज्ञानिक के स्थान पर मात्र एक प्रतिक्रियावादी व दुराग्रही नास्तिक दार्शनिक के रूप में प्रस्तुत करता है। इसे पढ़कर मेरे मन में इनके प्रति जो सम्मान था, वह लगभग समाप्त हो गया है। उनके प्रत्येक तर्क का उत्तर सरलता से दिया जा सकता है, परन्तु इस ग्रन्थ में जीव की सत्ता की सिद्धि आवश्यक नहीं है, पुनरपि यहाँ हम संक्षेप में कुछ विचार कर रहे हैं। रोबोट में इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न, द्वेष, सुख व दुःख ये कोई गुण नहीं होते। वह किसी मनुष्य द्वारा निर्मित व संचालित होता है। उधर कोई भी जीवित प्राणी किसी अन्य द्वारा संचालित नहीं होता है, बल्कि प्रत्येक कर्म को करने में स्वतन्त्र होता है।

आज हॉकिंग साहब जैसे जो कोई वैज्ञानिक इच्छा, ज्ञान आदि गुणों से युक्त व्यवहार की कथित वैज्ञानिक व्याख्या करके जीवात्मा की सत्ता को नकारने का प्रयास करते हैं, वह वस्तुतः इस प्रकार है, जैसे कोई व्यक्ति किसी हलवाई द्वारा बनाये जा रहे व्यंजनों की व्याख्या में आग, पानी, आटा, शक्कर, दूध, घी, कड़ाही, चम्मच आदि सबके कार्यों को बता रहा हो, इन खाद्य पदार्थों में नाना परिवर्तनों की रासायनिक प्रक्रिया बता रहा हो, परन्तु हलवाई की चर्चा ही न कर रहा हो, बल्कि उसके अस्तित्व को ही नकार रहा हो। इस विषय में हमारे एक साथी प्रो. भूपसिंह बहुत रोचक तर्क प्रस्तुत करते हैं। वे कहा करते हैं कि यदि कोई नास्तिक वैज्ञानिक स्वयं को एक रोबोट मानता हो, तो मैं उसे आग में कूदने के लिए कहूँगा, क्योंकि दोनों जड़ हैं और इस कारण ऐसा करने से उस वैज्ञानिक महोदय को कोई दुःख-दर्द तो होगा ही नहीं। ऐसी कथित वैज्ञानिक व्याख्याएँ वास्तव में अवैज्ञानिक व दुराग्रहपूर्ण ही होती हैं।

इसी प्रकार ये वैज्ञानिक इस सृष्टि की वैज्ञानिक व्याख्या करते समय उसके निर्माता, नियन्त्रक वा संचालक असीम बुद्धि व बलसम्पन्न चेतन परमात्मतत्त्व की उपेक्षा ही नहीं करते, अपितु कुछ वैज्ञानिक तो उसके अस्तित्व को ही नकारने में एड़ी से चोटी तक का जोर लगाते हैं। निश्चित ही आज वैज्ञानिक मूल भौतिकी के क्षेत्र में सतत गम्भीर अनुसंधान कर रहे हैं और करना भी चाहिए। हम निःसन्देह वैज्ञानिकों की इन वैज्ञानिक व्याख्याओं की सराहना करते हैं, परन्तु इस सम्पूर्ण उपक्रम में वे चेतन नियन्त्रक व नियामक तत्त्व को सर्वथा उपेक्षित कर देते हैं। यही कारण है कि विज्ञान वर्तमान मूल भौतिकी की अनेक समस्याओं को आज तक नहीं सुलझा पाया है। इसी कारण विज्ञान की 'हिस्ट्री ऑफ टाइम' में

भारी त्रुटियाँ हैं, ऊर्जा-द्रव्य संरक्षण के भंग होने की समस्या है, 'क्यों' व 'क्या' जैसे प्रश्नों का उत्तर न मिल पाना समस्या है, वस्तुतः सर्वत्र समस्याएँ ही समस्याएँ हैं।

इस सबके लिखने का अभिप्राय यही है कि सम्पूर्ण जड़ जगत् में जो भी बल व गति विद्यमान है, उसके पीछे चेतन ईश्वर तत्त्व की ही मूल भूमिका है। उधर प्राणियों के शरीर में आत्मा की भूमिका रहती है। प्रत्येक गति के पीछे किसी न किसी बल की भूमिका होती है। केवल बल की भूमिका से गति यदृच्छया, निष्प्रयोजन एवं अव्यवस्थित होगी, परन्तु सृष्टि एक व्यवस्थित, बुद्धिगम्य व सप्रयोजन रचना है, इस कारण इसमें बल के साथ महती प्रज्ञा की भी भूमिका अवश्य है। बल व बुद्धि किंवा इच्छा, ज्ञान आदि का होना केवल चेतन में ही सम्भव है। यही चेतन तत्त्व ईश्वर कहलाता है। इस तत्त्व पर विचार करना वर्तमान विज्ञान के सामर्थ्य की बात नहीं है। इस कारण वर्तमान वैज्ञानिकों को भौतिक विज्ञान के साथ-2 दर्शन शास्त्र, जहाँ ईश्वर, जीव रूपी सूक्ष्मतम चेतन एवं प्रकृति, मन, प्राण आदि सूक्ष्मतर जड़ पदार्थों का विचार किया जाता है, पर भी गम्भीर चिन्तन करना चाहिए। इससे वर्तमान भौतिक विज्ञान की अनेक समस्याओं का समाधान करने में सहयोग मिलेगा।

महर्षि गोतम ने किसी सिद्धान्त (थ्योरी) के निरूपण के उपायों के पाँच अवयव बतलाये हैं—

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः। (न्या.द.1.1.32)

अर्थात् ये पाँच अवयव और उनकी प्रक्रिया इस प्रकार है—

1. प्रतिज्ञा — गति अनित्य है।

2. हेतु — क्योंकि हम इसे उत्पन्न व नष्ट होते देखते हैं।

3. उदाहरण — जैसे लोक में जड़ पदार्थों वा चेतन प्राणियों द्वारा नाना प्रकार की गतियों का उत्पन्न होना देखा जाता है, साथ ही उन गतियों का विराम भी चेतन द्वारा होना देखा जाता है।

4. उपनय — उसी प्रकार अन्य गतियाँ भी अनित्य हैं।

5. निगमन — सभी दृष्ट वा अदृष्ट गतियाँ अनित्य हैं।

गति की अनित्यता की सिद्धि के साथ इसी प्रकार गति के पीछे चेतन कर्त्ता के अस्तित्व की सिद्धि करते हैं—

1. प्रतिज्ञा — गति मूलत: चेतन के बल द्वारा उत्पन्न व नियन्त्रित होती है।

2. हेतु — हम जगत् में विभिन्न गतियों का विभिन्न चेतन प्राणियों द्वारा उत्पन्न व नियन्त्रित होना देखते हैं।

3. उदाहरण — जैसे हम स्वयं नाना गतियों को उत्पन्न व नियन्त्रित करते हैं।

4. उपनय — उसी प्रकार अन्य गतियाँ, जिनका कोई प्रेरक व नियन्त्रक साक्षात् दिखाई नहीं देता, वे भी किसी अदृष्ट चेतन तत्त्व (ईश्वर आदि) द्वारा नियन्त्रित व प्रेरित होती हैं।

5. निगमन — सभी प्रकार की गतियों को उत्पन्न, प्रेरित व नियन्त्रित करने वाला कोई न कोई चेतन तत्त्व (ईश्वर अथवा जीव) अवश्य होता है अर्थात् बिना चेतन के गति उत्पन्न, नियन्त्रित व संचालित नहीं हो सकती।

इसी प्रकार बल के विषय में विचार करते हैं—

1. प्रतिज्ञा — प्रत्येक बल के पीछे चेतन तत्त्व की भूमिका है।

2. हेतु — क्योंकि हम चेतन प्राणियों में बल का होना देखते हैं।

3. उदाहरण — जैसे लोक में हम नाना क्रियाओं में अपने बल का उपयोग करते हैं।

4. उपनय — उसी प्रकार सृष्टि में जो विभिन्न प्रकार के बल देखे जाते हैं, उन सबमें किसी अदृष्ट चेतन की भूमिका होती है।

5. निगमन — प्रत्येक बल के पीछे किसी न किसी चेतन (ईश्वर अथवा जीव) की मूल भूमिका अवश्य होती है, किंवा वह बल उस चेतन का ही होता है। जड़ पदार्थ में अपना कोई बल नहीं होता है।

अब बुद्धिगम्य कार्यों में चेतन तत्त्व की भूमिका पर विचार करते हैं—

1. प्रतिज्ञा— प्रत्येक बुद्धिगम्य एवं व्यवस्थित रचना के पीछे चेतन तत्त्व की भूमिका होती है।

2. हेतु— क्योंकि हम चेतन प्राणियों को बुद्धिगम्य कार्य करते देखते हैं।

3. उदाहरण— जैसे हम अपनी बुद्धि के द्वारा नाना प्रकार के कार्यों को सिद्ध करते हैं।

4. उपनय— उसी प्रकार सृष्टि में विभिन्न बुद्धिगम्य रचनाओं के पीछे ईश्वर रूपी अदृष्ट चेतन की भूमिका होती है।

5. निगमन— सभी प्रकार की बुद्धिगम्य रचनाओं किंवा सम्पूर्ण सृष्टि की प्रत्येक क्रिया के पीछे चेतन तत्त्व की अनिवार्य भूमिका होती है।

इस प्रकार गति व संयोगजन्य पदार्थों के अनादि व अनन्त न हो

सकने के साथ-2 विभिन्न गति, बल व बुद्धिमत्तापूर्ण रचनाओं के पीछे चेतन तत्त्व की अनिवार्य भूमिका सिद्ध होती है। कुछ कार्यों में जीव रूपी चेतन की भूमिका होती है। इसी कारण महर्षि वेदव्यास ने लिखा—

सा च प्रशासनात्। (ब्र.सू.1.3.11)

अर्थात् इस सम्पूर्ण सृष्टि की नाना क्रियाएँ उस ब्रह्म के प्रशासन से ही सम्पन्न होती हैं। जीव के लिए महर्षि कपिल ने लिखा—

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम्। (सां.द.1.62)

इस प्रकार पाठक यह समझ गये होंगे कि जो भी पदार्थ सूक्ष्म कारण पदार्थों के संयोग से बनता है तथा जो किसी अन्य से प्रेरित गति, बल, क्रिया आदि गुणों से युक्त होता है, वह पदार्थ अनादि नहीं हो सकता। जबकि जो पदार्थ ऐसे सूक्ष्मतम रूप में विद्यमान होता है, जिसका कोई अन्य कारण विद्यमान नहीं हो, वह अनादि हो सकता है। इससे प्रकट हुआ कि मूल प्रकृति रूप पदार्थ, जहाँ कोई गति आदि गुण विद्यमान नहीं रहते, वह अनादि होता है। इसी अनादि पदार्थ से सर्वोच्च नियन्त्रक, नियामक, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ ईश्वर तत्त्व इस सृष्टि की रचना समय-2 पर करता रहता है। कभी सृष्टि, तो कभी प्रलय होती रहती है। इस सृष्टि-प्रलय के चक्र का न तो कभी आदि है और न कभी अन्त। न तो कोई सृष्टि अनादि व अनन्त हो सकती है और न ही कोई प्रलय, परन्तु इनका चक्र अवश्य अनादि व अनन्त है।

इस प्रकार हमने बिग-बैंग सिद्धान्त एवं इटर्नल यूनिवर्स इन दोनों ही मान्यताओं को लेकर सृष्टि के रचयिता चेतन ईश्वर तत्त्व के अस्तित्व की अनिवार्यता को सिद्ध किया। स्ट्रिंग थ्योरी एवं एम-थ्योरी दोनों ही बिग-बैंग में ही विश्वास करती हैं, इसी कारण इनको लेकर पृथक् से

ईश्वर तत्त्व की सिद्धि आवश्यक नहीं है। प्रबुद्ध एवं प्रज्ञावान् पाठकों को चाहिए कि वे अपने-2 हठ, दुराग्रह व अहंकार को त्यागकर सच्ची वैज्ञानिकता का परिचय दें।

* * * * *

सामान्यतः ईश्वर का अनुभव क्यों नहीं होता?

यहाँ कुछ पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं कि सृष्टि की विभिन्न क्रियाओं के कर्त्ता के रूप में हमें ईश्वर का अनुभव क्यों नहीं होता? आइये, इस प्रश्न पर विस्तार से विचार करते हैं—

यहाँ सर्वप्रथम हम विचारें कि किसी क्रिया के संचालक वा कर्त्ता का अनुभव किन-2 परिस्थितियों में होता है?

1. कर्त्ता के साकार होने पर किसी को भी उसका प्रत्यक्ष हो सकता है।

2. क्रिया के प्रारम्भ व समाप्ति के लक्षणों का अनुभव होने पर ही कर्त्ता का बोध सहज होता है।

3. कर्त्ता के स्वयं के अन्दर किसी हलचल विशेष से भी उसके कर्त्तापन का अनुभव होता है।

4. कर्त्ता के अनुभव के लिए क्रिया की विविध गतिविधियों वा लक्षणों को पहचानने का ज्ञान अनिवार्य है।

5. कर्त्ता के निराकार होने पर सिद्धान्त निरूपण के उपाय के पाँचों अवयवों का सम्यग् ज्ञान अनिवार्य है।

अब उपर्युक्त बिन्दुओं पर क्रमशः विचार करते हैं—

1. कर्त्ता के साकार होने पर उसका प्रत्यक्ष होना सरल है। हम लोक में विभिन्न क्रियाओं के संचालक, नियन्त्रक एवं विभिन्न वस्तुओं के

निर्माताओं को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर तत्त्व साकार नहीं होने अर्थात् निराकार होने से नेत्रों से प्रत्यक्ष नहीं होता। इसी प्रकार वह स्वाद, गन्ध, स्पर्श व शब्द का विषय नहीं होने से रसना, प्राण, त्वचा व श्रोत्र से भी प्रत्यक्ष नहीं होता। इसके साथ ही अत्यन्त सूक्ष्म एवं अनन्त विशाल अर्थात् सर्वव्यापक, अत्यन्त निकट एवं अत्यन्त दूरस्थ पदार्थ का भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। वह ईश्वर सूक्ष्मता व व्यापकता में अनन्त होने तथा हमारे निकटतम और दूरतम विद्यमान रहने से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

2. हम लोक में होने वाली अनेक क्रियाओं को प्रारम्भ व समाप्त होते हुए प्रत्यक्ष देखते हैं, इस कारण उन क्रियाओं के प्रारम्भ व समापन के कर्त्ता का बोध सहजता से हो जाता है। सृष्टि की वे क्रियाएँ, जिनको प्रारम्भ होते अथवा समाप्त होते हम नहीं देख सकते अर्थात् जिन क्रियाओं को हम अपने जन्म से लेकर मरण तक यथावत् देखते व सुनते हैं, उन क्रियाओं के प्रारम्भ व समाप्त होने का हमें विचार ही नहीं आता। आकाश में विभिन्न लोकों का भ्रमण, प्रकाशन, अणु वा परमाणुओं की गतियाँ आदि हमने जन्म से ही जैसी देखी व सुनी हैं, वैसी ही अब तक चल रही हैं और हमारे जीवन काल में वैसी ही बनी रहेंगी। इस कारण इनके कर्त्ता, नियन्त्रक, संचालक आदि गुणों से युक्त किसी चेतन कर्त्ता की साधारणत: कल्पना ही नहीं होती। यदि कोई अत्यल्पायु जीव किसी वाहन को केवल चलता हुआ ही देखे, उसको कभी विराम अवस्था में नहीं देखे, तब उसके मन में यह विषय ही नहीं आयेगा कि इसे किसी कर्त्ता ने चलाया वा चला रहा है।

3. जब कोई साकार कर्त्ता भी यदि किसी वाहन आदि यन्त्र के पास बैठा रहे, परन्तु अपने शरीर में कोई भी हलचल न करे, तब भी किसी

प्रत्यक्षदर्शी को ऐसा बोध नहीं हो सकता कि वह कर्त्ता (चालक) उस वाहन को चला रहा है, बल्कि उसे ऐसा प्रतीत होगा कि वाहन स्वत: ही चल रहा है।

4. जब तक किसी को क्रिया के आदि, अन्त व मध्य में प्रतीत होने वाले नाना लक्षणों का ज्ञान न हो सके, तब तक उसे कर्त्ता का बोध नहीं हो सकता। किसी पशु को इस बात का बोध नहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति बस, रेल, हवाई जहाज आदि को चलाता है। वह इन वाहनों को चलते व रुकते भी देख सकता है, उनमें बैठे चालक को भी देख सकता है, पुनरपि उसे यह बोध नहीं हो सकता कि वह चालक ही इन वाहनों को चला रहा है वा रोक रहा है।

5. उपर्युक्त चारों बिन्दु साकार कर्त्ता से ही सम्बन्धित हैं। यदि कर्त्ता निराकार हो, तब उस स्थिति में सिद्धान्त निरूपण के सभी पाँचों अवयवों को समझने हेतु प्रतिभा का होना भी अनिवार्य है, अन्यथा ईश्वर तत्त्व के अस्तित्व का बोध नहीं हो पायेगा। वर्तमान विज्ञान केवल प्रयोग, प्रेक्षण वा परीक्षणों में ही विश्वास करता है, गणितीय व्याख्याओं में विश्वास करता है, इस कारण उसे ईश्वर के अस्तित्व का बोध नहीं होता। जहाँ उसकी सीमा समाप्त हो जाती है, वहाँ वह कह देता है कि यह हम नहीं जानते। यह बात तो सत्य है कि आप नहीं जानते, परन्तु क्या आपको जानने का यत्न भी नहीं करना चाहिए? इसके साथ ही क्या आपको ऐसा कहने का भी अधिकार है कि जो हम नहीं जानते, उसे हम मानेंगे भी नहीं? ऐसा दुराग्रह विज्ञान तो नहीं माना जा सकता। क्या आपको यहाँ वैदिक विज्ञान वा दर्शन का आश्रय नहीं लेना चाहिए? आप यह क्यों समझते हैं कि जो वर्तमान विज्ञान से सिद्ध होने योग्य है, वही सत्य है, अन्य सब मिथ्या है। इस विषय में रिचर्ड पी. फेनमैन ने उचित ही लिखा

है—

"Mathematics is not a science from our point of view, in the sense that it is not a natural science. The test of its validity is not experiment. We must incidentally, make it clear from the beginning that if a thing is not science, it is not necessarily bad. For example, love is not a science. so, if something is said not to be a science, it does not mean that there is something wrong with it, it just means that it is not a science."

(Lectures on Physics, Pg. 27)

अर्थात् जिसे वर्तमान विज्ञान की सीमा में नहीं माना जा सकता, वह मिथ्या है, यह मानना उचित नहीं है। उसे मात्र यह कहना चाहिए कि यह विज्ञान नहीं है।

वस्तुत: फेनमैन ने मॉडर्न साइंस की परिभाषा के आधार पर ही यह बात कही है, पुनरपि वे विज्ञान से बाहर के विषयों को मिथ्या व अनावश्यक नहीं मानते। हम वर्तमान विज्ञान एवं दर्शन दोनों की ही परिभाषाओं को स्पष्ट कर चुके हैं। अब हम वैदिक दृष्टि से विज्ञान की परिभाषा पर विचार करते हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—

''विज्ञान उसको कहते हैं कि जो कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेकर तृण पर्यन्त पदार्थों के साक्षात् बोध का होना, उनसे यथावत् उपयोग का करना।''

(वेद विषय विचार— ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

इसके संस्कृत भाग में 'पृथिवीतृणमारभ्य प्रकृतिपर्य्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणम् ...' कहकर प्रकृतिपर्यन्त अर्थात् स्थूलतम से

लेकर सूक्ष्मतम पदार्थों के यथावत् ज्ञान को विज्ञान कहा है। इसमें ईश्वर व जीव का भी यथार्थ ज्ञान सम्मिलित है। यह यथार्थ ज्ञान कैसे प्राप्त करना है, इस विषय में कहा है कि ज्ञान, कर्म व उपासना से यथार्थ विज्ञान प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य है कि सत्यशास्त्रों के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् उसे कर्म अर्थात् प्रयोग, प्रेक्षण व परीक्षणों से पुष्ट करना, जिसे आज का विज्ञान भी करता है। जो विषय प्रयोग वा प्रेक्षणों से सिद्ध वा साक्षात् नहीं हो सकते, उनके लिए उपासना को विशेष साधन रूप बतलाया है।

योग साधना से प्राप्त अन्तर्दृष्टि वैदिक ऋषियों की वह विशिष्ट देन है, जिसके बल पर उन ऋषियों ने सृष्टि के साथ-2 जीव व ईश्वर जैसे निराकार चेतन पदार्थों का साक्षात् करके यथार्थ विज्ञान को प्राप्त किया था। यह ज्ञान प्राय: निर्भ्रान्त होता है। इसी अन्तर्दृष्टि के द्वारा प्राप्त यथार्थ विज्ञान को उन महर्षियों ने कल्प सूत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति, षड्दर्शनों, उपनिषदों, रामायण व महाभारत आदि ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया। वे परम योगिजन अपनी उपासना=समाधि के द्वारा बड़े लोक-लोकान्तरों से लेकर सूक्ष्म मूलकणों व क्वाण्टाज् एवं इनसे भी सूक्ष्मतम प्राण, छन्द व मरुद् आदि पदार्थों में अपने मन वा बुद्धितत्त्व को प्रविष्ट कराकर उनका अनुभव बिना किसी बाह्य तकनीक के किया करते थे। इससे आगे वे स्वयं अपने आत्म स्वरूप एवं सबसे सूक्ष्म व अनन्त तत्त्व ईश्वर का साक्षात् अनुभव किया करते थे।

इस प्रकार वैदिक विज्ञान का क्षेत्र वर्तमान विज्ञान की अपेक्षा बहुत व्यापक है। हमने ऐतरेय ब्राह्मण का वैज्ञानिक व्याख्यान (वेदविज्ञान-आलोक:) करते समय महर्षि ऐतरेय महीदास की योगदृष्टि से जाने गये सृष्टि के गूढ़ रहस्यों को स्वयं अनुभव किया है। आश्चर्य होता है कि

कैसे महर्षि भगवन्त अपनी अन्तर्दृष्टि से सृष्टि विज्ञान के सूक्ष्म व गम्भीर रहस्यों का साक्षात् किया करते थे। यह अन्तर्दृष्टि भी ईश्वर कृपा के बिना नहीं मिल पाती। 'वेदविज्ञान-आलोकः' ग्रन्थ में ईश्वरीय सत्ता के संकेत देने वाले अनेक प्रसंग विद्यमान हैं। हाँ, कोई वर्तमान में योगी कहलाने वालों से इस विज्ञान की अपेक्षा करे, तो उसे निराशा ही हाथ लगेगी, क्योंकि आज संसार से योगविद्या का लोप हो गया है।

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

ईश्वर का वैज्ञानिक स्वरूप

सृष्टिकर्त्ता— इस सृष्टि के रचयिता, नियन्त्रक व संचालक के रूप में चेतन तत्त्व ईश्वर की सिद्धि के उपरान्त हम यह विचार करते हैं कि वह वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध किया हुआ ईश्वर स्वयं कैसा है ? यहाँ तक यह तो निश्चित हुआ कि जो सम्पूर्ण सृष्टि की रचना, संचालन व धारण करता है, उसे ही ईश्वर कहते हैं, न कि किसी शरीरधारी व चमत्कारी को ईश्वर कहते हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि आज सृष्टि के रचयिता को ईश्वर मानकर कोई नहीं पूजता, बल्कि नाना चमत्कार (जादू) दिखाने वालों को ही ईश्वर समझकर पूजा जाता है। इस पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हैं—

सत् स्वरूप— सर्वप्रथम वह ईश्वर नित्य होना चाहिए। यदि वह ईश्वर अनित्य हो गया, तब उसे बनाने वाली कोई उससे भी महती चेतन सत्ता विद्यमान होनी चाहिए, जो किसी अनित्य ईश्वर नामक पदार्थ को उत्पन्न कर सके। यदि ऐसा हो भी, तब वह महती चेतन सत्ता अवश्य अनादि व नित्य होनी चाहिए। यदि ऐसा मानें, तो उस अनादि चेतन सत्ता को ही ईश्वर नाम दिया जाये, न कि अनित्य सत्ता को अनादि माना जाये। इस कारण ईश्वर सत् स्वरूप सिद्ध होता है। ध्यातव्य है कि कोई भी चेतन सत्ता कभी किसी के द्वारा नहीं बनाई जा सकती और न स्वयं ही बनती है, बल्कि वह निश्चित रूप से अनादि ही होती है।

चित् स्वरूप— वह ईश्वर सत् स्वरूप होने के साथ चेतन भी होना

चाहिए, क्योंकि चेतन सत्ता ही इच्छा, ज्ञान व प्रयत्न इन तीनों गुणों से युक्त होकर नाना प्रकार की रचनाओं को सम्पादित कर सकती है। जड़ पदार्थ में कभी चेतना का प्रादुर्भाव हो ही नहीं सकता। जो रासायनिक संयोगों से चेतना की उत्पत्ति मानते हैं, वे पहले तो इतना ही समझ लें कि किसी भी क्रिया के प्रारम्भ मात्र के लिए भी चेतन तत्त्व की अनिवार्यता है, ऐसा हम अब तक सिद्ध कर ही चुके हैं। इस कारण रासायनिक क्रिया भी बिना चेतना के सम्भव नहीं है। इस कारण रासायनिक क्रिया से चेतना के प्रादुर्भाव की मान्यता स्वत: निरस्त हो जाती है।

आनन्द स्वरूप— इसके साथ वह सत्ता आनन्दस्वरूप भी होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि को रचने में उसे किंचित् भी क्लेश, दु:ख आदि नहीं होना चाहिए। यदि वह सत्ता दु:ख व क्लेश से युक्त होने की आशंका से ग्रस्त हो जाये, तब वह सृष्टि रचना जैसे महान् कर्म को नहीं कर सकेगी। इसलिए ईश्वर तत्त्व की परिभाषा करते हुए **महर्षि पतंजलि** ने कहा है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट: पुरुषविशेष ईश्वर: (यो.द.1.24)

अर्थात् अविद्यादि क्लेशों, पाप-पुण्य आदि कर्मों एवं उनके फलों, वासनाओं से पृथक् पुरुष अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में शयन करने वाला=व्याप्त रहने वाला चेतन तत्त्व ईश्वर कहाता है। इस कारण वह सदैव आनन्दस्वरूप ही है। इसीलिए ऋषि दयानन्द ने ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा है।

ध्यातव्य है कि क्लेश व दु:ख केवल उसी को होता है, जिसे कोई वांछित पदार्थ अप्राप्य हो। यदि ऐसा है, तब वह सत्ता अपूर्णता से ग्रस्त होगी। ऐसा होने पर वह सृष्टि की रचना, धारण, पालन व संचालन में

समर्थ कभी नहीं हो सकती।

सर्वव्यापक— हम जानते हैं कि हमारी सृष्टि में वर्तमान वैज्ञानिक कदाचित् दो अरब गैलेक्सियों को देख वा अनुभव कर चुके हैं। हमारी ही गैलेक्सी में लगभग दो अरब तारे हैं। वैज्ञानिक अब तक देखे गये ब्रह्माण्ड की त्रिज्या 10^{26} मी. मानते हैं। यह तो हमारी तकनीक की दृष्टि की सीमा है। इसके बाहर यह ब्रह्माण्ड कहाँ तक फैला है, इसे कोई नहीं जानता और न ही जान सकता। दो गैलेक्सियों के मध्य अरबों-खरबों किलोमीटर क्षेत्र में कोई लोक नहीं होता, पुनरपि सम्पूर्ण रिक्त स्थान में सूक्ष्म हाइड्रोजन गैस अत्यन्त विरल अवस्था में भरी रहती है। उसके मध्य भी वैक्यूम एनर्जी भरी रहती है।

सारांश यह है कि इतने बड़े ब्रह्माण्ड में नितान्त रिक्त स्थान कहीं नहीं है। इसमें हमारे सूर्य से करोड़ों गुने बड़े तारे भी विद्यमान हैं, तो सूक्ष्म लेप्टॉन्स, क्वार्क्स एवं क्वाण्टा भी विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त इनसे भी सूक्ष्म प्राण, छन्द व मनस्तत्त्वादि पदार्थ विद्यमान हैं। इन सभी स्थूल व सूक्ष्म पदार्थों में गति व बल की विद्यमानता है। सबमें सृजन व विनाश का खेल हो रहा है। इस कारण जहाँ-2 यह खेल चल रहा है, वहाँ-2 ईश्वर तत्त्व भी विद्यमान होना चाहिए। इसका आशय यह है कि ईश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों में भी विद्यमान है तथा स्थूल से स्थूलतम पदार्थों में भी विद्यमान है। इसी कारण कठोपनिषद् के ऋषि ने कहा—

अणोरणीयान् महतो महीयान्। (कठ.उ.2.20)

अर्थात् वह परमात्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। इस कारण वह सर्वव्यापक है।

यजुर्वेद ने कहा है—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। (यजु.40.1)

अर्थात् वह ईश्वर इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर उसे आच्छादित किये हुए है। इस प्रकार वह ईश्वर सर्वव्यापक सिद्ध होता है। वह एकदेशी कभी नहीं हो सकता। जो एकदेशी होगा, वह इतने विशाल ब्रह्माण्ड का निर्माण, धारण व संचालन करने में कभी समर्थ नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि जैसे शरीर में जीवात्मा एक स्थान पर रहकर भी सारे शरीर का संचालन करता है, वैसे ईश्वर भी एकदेशी होकर भी ब्रह्माण्ड का संचालन कर सकता है, तो यह तर्क उचित नहीं है। जीवात्मा को शरीर संचालन के लिए ईश्वर द्वारा निर्मित सूक्ष्म शरीररूपी साधन की भी आवश्यकता पड़ती है, उसी से स्थूल शरीर का संचालन करता है। यदि परमात्मा एकदेशी होवे, तो वह किसके बनाये साधनों की सहायता से ब्रह्माण्ड का संचालन करेगा? इसके साथ ही एकदेशी अनन्त सामर्थ्य वाला भी नहीं हो सकता, जो ब्रह्माण्ड को बना सके। दुर्भाग्यवश वर्तमान संसार के ईश्वरवादी लोग सर्वव्यापक ईश्वर की उपासना न करके मन्दिर, मस्जिद, चर्च, क्षीरसागर, कैलाश पर्वत, चौथे व सातवें आसमान पर रहने वाले कल्पित ईश्वरों की पूजा में लगे हैं।

सर्वशक्तिमान्— इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बनाने, चलाने व नियन्त्रित करने वाला सर्वव्यापक ईश्वर तत्त्व सर्वशक्तिमान् ही होना चाहिए। आज का विज्ञान इस बात से अवगत है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड कितना विशाल है? सूक्ष्म कणों से लेकर विशाल लोकों की रचना करना, उन्हें गतियाँ प्रदान करना और सभी बलों व ऊर्जाओं को भी बल व ऊर्जा प्रदान करना, किसी सामान्य शक्ति वाले तत्त्व का सामर्थ्य नहीं है। जरा विचारें कि इस पृथिवी और इसके समान अरबों-खरबों लोकों, इन लोकों से लाखों व करोड़ों गुणा भारी तारों को बनाने, धारण करने, परिक्रमण व घूर्णन

कराने वाली सत्ता की शक्ति कितनी होगी? इस कारण वह ईश्वर तत्त्व सर्वशक्तिमान् ही हो सकता है। यहाँ ध्यातव्य है कि 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर बिना किसी उपादान पदार्थ के शून्य से सृष्टि रचना कर सकता है अथवा वह बिना किसी नियम के चमत्कारपूर्वक कुछ भी कर सकता है। उसके लिए किसी भी कार्य का करना असम्भव नहीं है, ऐसा कथन उचित नहीं है। ईश्वर स्वयं नियामक है, जो अपने ही नियमों के अनुसार कार्य कर सकता है, अन्यथा कार्य नहीं कर सकता। उसकी सर्वशक्तिमत्ता तो इस बात में है कि वह इतनी बड़ी सृष्टि को बिना किसी की सहायता के बनाता, चलाता व समय आने पर उसका प्रलय भी करता है।

निराकार— अब इस बात पर विचार करें कि जो पदार्थ सर्वशक्तिमान् अर्थात् अनन्त ऊर्जा व बल से युक्त एवं सर्वव्यापक होगा, उसका आकार क्या होगा? हम यह समझते हैं कि इस विषय में सामान्य बुद्धि वाला भी यही कहेगा कि सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमती सत्ता का कोई आकार नहीं होगा। वस्तुतः ऊर्जा व बल जैसे गुण किसी साकार पदार्थ में होते ही नहीं हैं। इस संसार में साकार पदार्थों में जो भी बल वा ऊर्जा दिखाई देती है, वह वस्तुतः उस साकार पदार्थ के अन्दर विद्यमान अन्य निराकार पदार्थ की ही होती है। विभिन्न विशाल वा लघु यन्त्रों में विद्युत्, जो निराकार ही होती है, आदि का ही बल विद्यमान होता है। प्राणियों के शरीरों में चेतन जीवात्मा का ही बल कार्य करता है। निराकार विद्युत् आदि पदार्थों में चेतन परम तत्त्व ईश्वर का बल कार्य करता है, यह बात हम पूर्व में ही लिख चुके हैं। जो ईश्वर तत्त्व प्रत्येक सूक्ष्म व स्थूल पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें बल व ऊर्जा प्रदान कर रहा है, वह केवल निराकार ही हो सकता है, साकार कदापि नहीं।

प्रश्न— ईश्वर तो निराकार ही होता है, परन्तु दुष्टों को दण्ड व सज्जनों के संरक्षण हेतु कभी-2 शरीर धारण करता है, इसे ईश्वर का अवतार लेना कहा जाता है।

उत्तर— यह बात न केवल वेद एवं आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध है, अपितु विज्ञान व युक्ति के भी सर्वथा विरुद्ध है।

अकायमव्रणमस्नाविरम् (यजु.40.8)
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः (मु.उ.2.2)

यहाँ ईश्वर को अमूर्त (निराकार), कभी भी नस-नाड़ी के बन्धन में न आने वाला अर्थात् अशरीरी कहा है। ऐसी स्थिति में वेद, उपनिषदादि ग्रन्थों को मानने वाले पौराणिक (कथित सनातनी) महानुभाव अवतारवाद की धारणा के संवाहक बने हुए हैं, यह बड़े शोक का विषय है। वे कहने भर को वेद को ईश्वरीय ज्ञान व परम प्रमाण मानते हैं, परन्तु वे वास्तव में कथित प्रचलित पुराणों ब्रह्मवैवर्त, भागवत आदि में ही आस्था रखते हैं, जबकि ऐतरेय, शतपथ आदि वास्तविक पुराणों से नितान्त दूर व अनभिज्ञ हैं।

इसी मिथ्या धारणा ने सनातन वैदिक धर्म, ज्ञान-विज्ञान एवं सनातन संस्कृति का भारी विनाश कर डाला है, यह बात विगत 2-3 सहस्त्र वर्षों के भारतीय इतिहास से प्रमाणित होती है। इस अवतारवाद की मिथ्या धारणा से मूर्तिपूजा, बहुदेववादादि दोषों ने जन्म लिया, जिनकी प्रतिक्रिया में ही विश्व में अनेक अवैदिक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ और वैदिक धर्म का भारी अपयश हुआ व निरन्तर हो रहा है। आज अनेक चालाक व धूर्त व्यक्ति स्वयं को ईश्वर का अवतार वा एजेंट घोषित करके धर्मभीरु एवं अविवेकी जनों को भ्रमित करके ठगते रहते हैं।

वेद, उपनिषद् के मत के साथ-2 हम वैज्ञानिक युक्तियों से भी विचार करते हैं। जो महानुभाव यह कहते हैं कि बिना शरीर धारण किये ईश्वर दुष्टों का संहार नहीं कर सकता, वे यह नहीं विचारते कि इस विशाल ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण प्रलय करने किंवा इसकी सृष्टि करने हेतु तो शरीर धारण नहीं करना पड़ता, तब किसी मनुष्य को मारने के लिए ईश्वर को जन्म लेना पड़े, यह नितान्त अज्ञानता की बात है। वह ईश्वर अशरीरी रहकर भी उन दुष्ट व सज्जनों को जन्म दे सकता है, तो क्या वह ईश्वर अशरीरी रहकर उन दुष्टों को मारकर सज्जनों की रक्षा नहीं कर सकता? इस विषय पर विवेचना से पुस्तक का स्तर ही कम होता है, क्योंकि जिन महानुभावों को इतनी सी बात समझ नहीं आती कि सर्वव्यापक, एकरस व निराकार ईश्वर किसी शरीर विशेष में केन्द्रित नहीं हो सकता, वे महानुभाव विज्ञान के गम्भीर रहस्यों के भण्डार वेद व आर्ष ग्रन्थों को कैसे समझ सकेंगे? इस कारण इस साधारण विषय को हम यहीं विराम देते हैं।

सर्वज्ञ— ईश्वरतत्त्व की सर्वशक्तिमत्ता के पश्चात् उसकी सर्वज्ञता पर विचार करते हैं। यह सामान्य बुद्धि की बात है कि आधुनिक जगत् में एक-दो यन्त्र बनाने वाला इंजीनियर तथा ब्रह्माण्ड के मात्र कुछ रहस्यों को जानने वाला एक वैज्ञानिक बहुत बुद्धिमान् माना जाता है। मानव निर्मित किसी भी जटिलतम रचना से भी जटिल व दुर्बोध्य रचना एक पौधे की पत्ती की होती है। शरीर की कोशिका की संरचना व क्रियाविज्ञान के समक्ष महान् से महान् वैज्ञानिक नतमस्तक हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को रचता और चलाता है, वह कितना ज्ञानी होगा? वस्तुतः वह ईश्वर सर्वज्ञ ही होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जानने का प्रयास यह धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव करोड़ों वर्षों से करता रहा है

और जब तक सृष्टि रहेगी, वह ऐसा प्रयत्न करता भी रहेगा, परन्तु उसे कभी पूर्णत: नहीं जान सकेगा। वह ऐसा ब्रह्माण्ड जिसने बनाया है, जो उसे चला रहा है, वह निश्चित ही सर्वज्ञ अर्थात् अनन्त ज्ञान वाला ही होगा।

पवित्र— वह ऐसा ईश्वर कभी भी सृष्टि के उपादान कारण रूप पदार्थ में मिश्रित नहीं होता, इसी कारण उसे पवित्र भी कहते हैं अर्थात् वह सदैव विशुद्ध रूप में विद्यमान रहता है, इसी कारण ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण माना जाता है, जबकि प्रकृति रूपी मूल पदार्थ इस सृष्टि का उपादान कारण माना जाता है, यही यथार्थता है। इसके साथ ही यह भी तथ्य है कि ईश्वर कभी किसी भी प्रकार के दोष से किंचिदपि ग्रस्त नहीं हो सकता। वह सबमें व्याप्त होता हुआ भी सबसे सर्वथा पृथक् विशुद्ध रूप में ही बना रहता है।

सर्वाधार— ऐसा वह ईश्वर ही इस ब्रह्माण्ड को बनाता व चलाता हुआ उसे धारण भी कर रहा है, इस कारण वह सर्वाधार कहलाता है। वर्तमान विज्ञान इसके धारण में गुरुत्वाकर्षण बल तथा डार्क मैटर की भूमिका मानता है। यह सत्य भी है, परन्तु इन धारक पदार्थों का धारक स्वयं ईश्वर तत्त्व ही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाना प्रकार के बलों के द्वारा धारण किया हुआ है और सभी बलों का मूल बल ईश्वर का ही बल है, ऐसा हम सिद्ध कर ही चुके हैं। इस कारण ईश्वर ही सर्वाधार है।

न्यायकारी-दयालु— ऐसा वह ईश्वर तत्त्व निश्चित ही सर्वदा सर्वथा पूर्ण व तृप्त वा अकाम होना चाहिए। तब वह इस सृष्टि की रचना स्वयं के लिए नहीं, बल्कि किसी अन्य अपूर्ण चेतन तत्त्व के उपभोग व मोक्ष हेतु करता है। वह अपूर्ण चेतन तत्त्व ही जीवात्मा कहाता है। यहाँ 'अपूर्ण'

का अर्थ यह समझना चाहिए कि वह बल, ज्ञान व आयतन आदि की दृष्टि से ईश्वर की अपेक्षा अत्यन्त लघु है। क्योंकि वह ईश्वर अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता, बल्कि जीवों की भलाई के लिए ही सृष्टि रचना करता है, इस कारण वह दयालु कहलाता है। वह सदैव जीवों को उनके कर्मों के अनुसार ही फल देता है, न उससे अधिक और न न्यून। इसी कारण उसे न्यायकारी भी कहा जाता है। कर्मानुसार फल का मिलना चेतन पदार्थ जगत् में कारण–कार्य के नियम के समान है। जड़ जगत् में हम सर्वत्र कारण–कार्य का नियम देखते हैं। वर्तमान विज्ञान भी जड़ जगत् में कारण–कार्य के नियम को स्वीकार करता है। आर्थर बेइज़र लिखते हैं—

"Cause and effects are still related in quantum mechanics, but what they concern needs careful interpretation ."

(Concepts of Modern Physics, Pg. 161)

जब जड़ जगत् में कारण–कार्य का नियम सर्वत्र कार्य करता है, भले ही उसे हम पूर्णत: न समझ पाएँ, तब वह चेतन जगत् में कार्य क्यों नहीं करेगा? हमारा मत यह है कि यहाँ कर्मफल व्यवस्था ही कारण–कार्य के नियम के रूप में कार्य करती है। हम इसे पूर्णत: कभी नहीं जान सकते। ईश्वर भी इस व्यवस्था को उपेक्षित नहीं कर सकता। उसकी प्रार्थना, उपासना आदि करने से भी वह किसी जीव के कर्मों के अनिष्ट फल से उस जीव को नहीं बचा सकता, इसी में उसका न्याय व दया दोनों ही समाहित हैं। यदि प्रार्थना से प्रभावित होकर वह जीवों को उनके पापों का दण्ड न दे, तो उसकी सम्पूर्ण कर्म–फल एवं न्याय व्यवस्था अस्त–व्यस्त हो जाये।

किसी अपराधी के अपराध को क्षमा करना न्यायाधीश का न्याय नहीं, बल्कि अन्याय ही होता है। इस क्षमा से वह अपराधी पाप करने हेतु और भी प्रोत्साहित होता है तथा इससे वह अनेक जीवों को और भी अधिक दु:ख दे सकता है, जिसका फल स्वयं न्यायाधीश को भी भोगना पड़ता है किंवा वही उन पापों का उत्तरदायी होता है। इस कारण सच्चा न्यायाधीश कभी किसी अपराधी को क्षमा नहीं करता और न ही क्षमा करना चाहिए। जब कोई सच्चा न्यायाधीश ऐसा नहीं करता, तब वह परमात्मा रूपी न्यायाधीश क्यों किसी के अपराध क्षमा करके अपनी न्याय व्यवस्था भंग करेगा?

ईश्वरीय व्यवस्था पूर्णत: व्यवस्थित व स्वाभाविक है, उसमें कभी कोई स्खलन नहीं होता। इस कारण जो ईश्वरवादी प्रार्थना, याग, तौबा, कॉन्फेशन आदि के द्वारा अपने पापमोचन की कामना करते हैं, वे ईश्वर तत्त्व के विशुद्ध स्वरूप को नहीं समझते। पाप के फल के विषय में महादेव शिव भगवती उमा से कहते हैं—

द्विधा तु क्रियते पापं सद्भिश्चासद्भिरेव च।
अभिसंधाय वा नित्यमन्यथा वा यदृच्छया॥

अभिसंधिकृतस्यैव नैव नाशोऽस्ति कर्मण:।
अश्वमेधसहस्रैश्च प्रायश्चित्तशतैरपि॥

अन्यथा यत् कृतं पापं प्रमादाद् वा यदृच्छया।
प्रायश्चित्ताश्वमेधाभ्यां श्रेयसा तत् प्रणश्यति॥[२]

इसका भाव यह है कि जो पाप प्रमाद वा असावधानीपूर्वक हो जाये,

[२] महाभारत, अनु. पर्व दानधर्मपर्व, अध्याय 145 दाक्षिणात्य संस्करण

वह प्रायश्चित्त आदि कुछ उपायों से मिट सकता है, परन्तु जो पाप जानकर वा प्रतिज्ञापूर्वक किया गया हो, वह कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। यही ईश्वर का सच्चा न्याय व यही सच्ची दया है। दण्ड देने के पीछे भी ईश्वर का प्रयोजन होता है कि उस पापी प्राणी के पापों से अन्य प्राणियों की रक्षा हो सके और वह पापी प्राणी स्वयं भी भविष्य में पाप में प्रवृत्त न होवे। वह ईश्वर पापी जीव को इसी प्रकार दण्ड देता है, जैसे योग्य माता-पिता अपनी सन्तान को बुराइयों से बचाने हेतु दयापूर्वक ताड़ना करते हैं, न कि वे क्रोधवश ऐसा करते हैं। इसी प्रकार वही ईश्वर सभी जीवों का सबसे बड़े माता-पिता के समान पालक, न्यायकारी व दयालु है।

आज संसार में एक सत्य सनातन वैदिक धर्म को त्यागकर मनुष्य समाज नाना सम्प्रदायों में विभाजित होकर नाना ईश्वरों की कल्पना कर रहा है। प्राय: सभी सम्प्रदाय पापों से मुक्ति के कई सरल उपाय बताते हैं। सभी प्राय: ईश्वर को पाप क्षमा करने वाला मानते हैं। इसलिए ईश्वर को प्रसन्न करने हेतु नाना प्रकार के पूजाडम्बर, नदी स्नान, नाम स्मरण, कथा स्मरण, व्रत, उपवास, रोजा, प्रार्थना, नमाज, नाना मूर्तियों, पेड़-पौधों वा पशुओं की पूजा आदि अनेक साधन प्रचारित कर रखे हैं। इनसे पाप तो क्षमा नहीं होते, किन्तु इन आडम्बरों के प्रचारकों की आजीविका अवश्य चल रही है। ये आडम्बर जितनी मात्रा में बढ़ रहे हैं, पाप भी उतनी ही मात्रा में निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। इससे सामान्य प्रबुद्ध व्यक्ति का विश्वास न केवल ईश्वर व उसकी कर्मफल व्यवस्था से उठता जा रहा है, अपितु नैतिक मूल्यों का भी निरन्तर क्षरण होता जा रहा है। इस कारण ईश्वर के दयालु व न्यायकारी दोनों ही विशेषणों का समन्वित वैज्ञानिक स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक है।

बड़े ही दु:खद आश्चर्य का विषय है कि भगवान् शिव के उपर्युक्त वचनों की उपेक्षा करके भगवान् शिव की पूजा के नाम पर शिवभक्त नाना प्रकार के पापों को क्षमा कराने की कामना से मन्दिरों में प्रतिमापूजन करते देखे जाते हैं। वस्तुत: ये सभी भक्त पाप त्यागने का प्रयास नहीं करते, पाप त्यागने की बुद्धि व शक्ति भी ईश्वर से नहीं माँगते, बल्कि भरपूर पाप करते हुए भी पापों का फल कभी न मिले, यही प्रार्थना करते हैं। इससे बड़ी नास्तिकता और क्या हो सकती है? ऐसा करना मानो ईश्वर को रिश्वतखोर अथवा मूर्ख समझना है। क्या कोई भक्त इसे अच्छा मानेगा? यह प्रच्छन्न नास्तिकता है, जो खुली नास्तिकता अर्थात् ईश्वर को न मानने से भी अधिक घातक होती है।

यहाँ यह और भी ज्ञातव्य है कि जो ईश्वर को क्षमा करने वाला भी नहीं मानते और संध्या, यज्ञ व ध्यानादि करते हैं, वे भी पापों में लिप्त हो जाते हैं और ऐसा करते हुए भी स्वयं को आध्यात्मिक प्रवक्ता वा आर्य मानते हैं। इस व्यवहार को भी प्रच्छन्न नास्तिकता कहते हैं, जो मूर्तिपूजन आदि से भी अधिक दोषपूर्ण है। सत्य तो यह है कि सृष्टि को समझे बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा आस्तिक बन ही नहीं सकता।

इस प्रकार ईश्वर तत्त्व के अनन्त गुण, कर्म व स्वभाव हैं। हमने यहाँ कुछ गुणों की विवेचना की। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर तत्त्व के स्वरूप का अत्यन्त सुन्दर विवेचन करते हुए गागर में सागर भर दिया है। वे लिखते हैं—

''ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और

सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।''

ईश्वर के स्वरूप का इससे सुन्दर और सारगर्भित सूत्ररूप में विवेचन कदाचित् ही कहीं मिले। आज संसार में प्रचलित विभिन्न मत-सम्प्रदायों में ईश्वर के मिथ्या कल्पित रूपों की भरमार है। ऐसे ही ईश्वरों के अस्तित्व का स्टीफन हॉकिंग ने 'द ग्रैंड डिज़ाइन' नामक पुस्तक में उपहासपूर्वक खण्डन किया है और करना भी चाहिए। यदि हॉकिंग के समक्ष ईश्वर तत्त्व का यह वैदिक वैज्ञानिक स्वरूप विद्यमान होता, तो उन्हें ईश्वर तत्त्व की मान्यता को खण्डित करने की आवश्यकता नहीं होती। यह आश्चर्य ही है कि कोई भी ईश्वरवादी हॉकिंग के विचारों को पढ़कर ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने हेतु प्रवृत्त होता नहीं दिखाई दिया, बल्कि ईश्वर की सत्ता को ही नकारने पर जोर दिया गया। आशा है कि आधुनिक वैज्ञानिकों को हमारे ईश्वर विषयक इस प्रकरण से ईश्वरीय सत्ता व स्वरूप का अवश्य बोध होगा और वे हॉकिंग जैसी भूल नहीं दोहराएँगे।

* * * * *

ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली

ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व व स्वरूप की वैज्ञानिकता की चर्चा के उपरान्त हम इस बात पर विचार करते हैं कि ईश्वर इस सृष्टि की रचना, संचालन, धारण व प्रलय आदि प्रक्रियाओं में अपनी क्या व कैसी भूमिका निभाता है अर्थात् उसकी कार्यप्रणाली अथवा क्रियाविज्ञान क्या है ? संसार भर के ईश्वरवादी नाना प्रकार से ईश्वर की चर्चा तो करते हैं, परन्तु इस बात पर विचार भी नहीं करते कि वह ईश्वर अपने कार्यों को कैसे सम्पन्न करता है ? हम यह जानते हैं कि इस सृष्टि में जो भी क्रियाएँ हो रही हैं, उनके पीछे चेतन तत्त्व ईश्वर की भूमिका है। वहीं प्राणियों के शरीरों में जीवात्मा रूपी चेतन तत्त्व की भी भूमिका होती है। हम यहाँ ईश्वर तत्त्व की भूमिका की चर्चा करते हैं।

क्या ईश्वर छोटे-2 कण, क्वाण्टा आदि से लेकर बड़े-2 लोक-लोकान्तरों के घूर्णन व परिक्रमण, उनके धारण, आकर्षण व प्रतिकर्षण बलों का प्रत्यक्ष कारण है ? नहीं, ईश्वर सूर्यादि लोकों व इलेक्ट्रॉन्स आदि कणों को पकड़कर नहीं घुमाता वा चलाता है, बल्कि ये सभी पदार्थ उन्हीं विभिन्न बलों, जिन्हें वर्तमान विज्ञान जानता है वा जानने का यत्न कर रहा है, के द्वारा अपने-2 कार्य कर रहे हैं। हाँ, इन बलों की उत्पत्ति जिन प्राण व छन्दादि पदार्थों से हुई है, उन्हें वर्तमान विज्ञान किंचिदपि नहीं जानता। इसी कारण वर्तमान विज्ञान द्वारा माने जाने वाले मूलबलों की उत्पत्ति एवं क्रियाविधि की समुचित व्याख्या करने में यह वर्तमान

विज्ञान अक्षम है।

इन मूल बलों की उत्पत्ति एवं नियन्त्रण विविध प्रकार की प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा होते हैं। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती, ये प्राण व छन्दादि रश्मियाँ भी मन एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व के मिथुन से उत्पन्न व नियन्त्रित होती हैं। इस कारण मन एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व के स्वरूप व व्यवहार को समझे बिना प्राण व छन्दादि रश्मियों एवं उनसे उत्पन्न विभिन्न कथित मूल बलों (गुरुत्व, विद्युत् चुम्बकीय, नाभिकीय बल एवं दुर्बल बल) के स्वरूप व क्रियाविज्ञान का यथावत् बोध नहीं हो सकेगा।

ध्यातव्य है कि मन व वाक् तत्त्व भी जड़ होने के कारण स्वत: किसी कार्य में प्रवृत्त होने का सामर्थ्य नहीं रखते। इन्हें प्रवृत्त करने वाला सबका मूल तत्त्व चेतन ईश्वर है। वही मन एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व को प्रेरित करता है। इनके मध्य एक काल तत्त्व भी होता है, परन्तु वह भी जड़ होने से ईश्वर तत्त्व से प्रेरित होकर कार्य करता है। इस प्रकार कार्य करने वाले किंवा प्रेरक एवं प्रेरित पदार्थों अथवा नियामक व नियम्य तत्त्वों की शृंखला इस प्रकार है—

चेतन ईश्वर तत्त्व काल को प्रेरित करता है। काल तत्त्व मन-वाक् को प्रेरित करता, पुन: मन एवं वाक् तत्त्व प्राण व छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करते हैं। तदुपरान्त वे प्राण व छन्दादि रश्मियाँ आधुनिक कथित चार प्रकार के मूल बलों को उत्पन्न व प्रेरित करती हैं। उसके पश्चात् वे चारों बल[३] समस्त सृष्टि को उत्पन्न व संचालित करने में सहायक होते हैं।

[३] वस्तुत: बलों की संख्या बहुत अधिक है, जो सभी प्राणादि रश्मियों के कारण ही उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार ईश्वर तत्त्व प्रत्येक क्रिया के समय केवल काल अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मियों को ही प्रेरित करता है, वे अग्रिम प्रक्रिया को आगे बढ़ाती हैं। ये इतने सूक्ष्म तत्त्व हैं कि मनुष्य कभी भी इन्हें किसी प्रयोग-प्रेक्षण के द्वारा नहीं जान सकता। केवल उच्च कोटि का योगी ही इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को जान व समझ सकता है। महायोगी महर्षि ऐतरेय महीदास ने इसी सम्पूर्ण प्रक्रिया को अपने महान् योग बल के द्वारा समझकर इसे महान् रहस्यपूर्ण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित किया है। परमेश्वर की असीम दया से हमने 'वेदविज्ञान-आलोक' ग्रन्थ को समझने में कुछ सफलता पाई है। इसमें स्थान-2 पर ईश्वर तत्त्व की भूमिका का वर्णन किंवा उसके क्रियाविज्ञान का सांकेतिक वर्णन है, जिसे पाठक उस ग्रन्थ का अध्ययन करके ही जान सकेंगे।

सारांशत: ईश्वर काल तत्त्व, 'ओम्' रश्मि व प्रकृति को प्रेरित करके सृष्टि प्रक्रिया को प्रारम्भ व सम्पादित करता है। वह किसी क्रिया में जीवात्मा की भाँति ऐसा भागीदार नहीं होता कि उसे अपने कर्मों का फल भोगना पड़े। वह सर्वथा अकाम है। केवल जीवों के लिए सब कुछ करता है, इस कारण वह कर्त्ता भी है और अकर्त्ता भी। वह सृष्टि का निमित्त कारण है। ईश्वर कैसे प्रेरित करता है? उस प्रेरणा वा जागरण का क्रियाविज्ञान क्या है? इसके लिए मद्रचित 'वैदिक रश्मिविज्ञानम्' ग्रन्थ पठनीय है।

* * * * *

अद्वैतवाद समीक्षा

इस संसार में जहाँ चार्वाक, बौद्ध व जैन मत आदि ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते हैं, वहीं कुछ अध्यात्मवादी मानते हैं कि इस सम्पूर्ण सृष्टि में मात्र ईश्वर तत्त्व की सत्ता है, जीव व प्रकृति आदि की कोई सत्ता नहीं है। यह विचार मध्यकाल में अनेक आचार्यों का रहा है। इन आचार्यों में से आद्य शंकराचार्य को प्रमुख स्थान दिया जाता है। अद्वैतवाद का आधार महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास (महर्षि वेदव्यास) का ब्रह्मसूत्र नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। यह मत संसार के अनेक वैदिक व अवैदिक किंवा भारतीय व विदेशी मत-मतान्तरों को प्रभावित करता रहा व कर रहा है। हम इसकी चर्चा न करके मात्र इसी विषय पर विचार करेंगे कि यह मत वेदविरुद्ध, स्वयं ब्रह्मसूत्रों के विरुद्ध तथा विज्ञान व युक्तियों के विरुद्ध क्यों है? ब्रह्मसूत्र के प्रथम दो सूत्रों से ही अद्वैतवाद खण्डित हो जाता है। वे दो सूत्र इस प्रकार हैं—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (ब्र.सू.1.1.1), जन्माद्यस्य यतः (ब्र.सू.1.1.2)

इन दो सूत्रों से ब्रह्म विषयक चर्चा प्रारम्भ करते हुए कहा है—

''अब हम ब्रह्म को जानने की इच्छा करते हैं। वह ब्रह्म कैसा व कौन है? यह बताते हुए कहते हैं कि जिससे जगत् का जन्मादि (जन्म, स्थिति व प्रलयादि) होता है।''

जरा विचारें कि जिस जगत् का जन्म होता है, जिसकी स्थिति होती है तथा समय आने पर जिसका प्रलय भी होता है, वह जगत् कभी मिथ्या नहीं हो सकता। इस ब्रह्म प्रतिपादक महान् ग्रन्थ के आधार पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थों की सत्ता को न जाने क्यों नकारा जाता है ? जबकि यह ग्रन्थ अपने प्रारम्भ में ही जगत् के सभी पदार्थों की वास्तविकता को प्रतिपादित कर रहा है। यह बात पृथक् है कि जगत् ब्रह्म की भाँति नित्य नहीं है, परन्तु जगत् मिथ्या (अवास्तविक) भी नहीं है। यहाँ जीव व प्रकृति रूपी मूल उपादान कारण के अस्तित्व का भी निषेध नहीं है। ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ के विषय में यह बहुत बड़ी भ्रान्ति हो गयी है और हो भी रही है। हमने 'वर्ल्ड कांग्रेस ऑन वैदिक साइंसेज' बैंगलोर में अगस्त 2004 में अनेक वैदिक विद्वानों तथा वर्तमान भौतिकशास्त्रियों को ब्रह्मसूत्र की मिथ्या व्याख्या करते देखा था और उन सबको हमने मंच से चुनौती भी दी थी कि वे ब्रह्मसूत्रों की गलत व्याख्या कर रहे हैं।

अद्वैतवाद की शास्त्रीय समीक्षा हेतु पाठकों को ऋषि दयानन्द सरस्वती रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक क्रान्तिकारी ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। हम यहाँ उसका पिष्टपेषण करना आवश्यक नहीं समझते, बल्कि हम यहाँ वर्तमान विज्ञान का आश्रय लेकर अद्वैतवाद की पुष्टि के प्रयास की समीक्षा अवश्य करेंगे। इस पक्ष के विद्वान् सर्वप्रथम आधुनिक विज्ञान के पदार्थ द्रव्य व ऊर्जा के पारस्परिक रूपान्तरण की चर्चा करते हुए अन्त में इन दोनों को चेतन ऊर्जा में परिवर्तनीय व उससे उत्पन्न सिद्ध करते हैं। सामान्यत: यह विचार वैज्ञानिक सत्य ही प्रतीत होता है, परन्तु इस पर विशेष चिन्तन करने पर इसकी असारता स्पष्ट हो जाती है।

सर्वप्रथम हम इस बात का विचार करें कि परिवर्तनीय तत्त्व कौन-कौन से हो सकते हैं ? स्पष्टत: जो पदार्थ विकारी होते हैं, वे ही विकार

को प्राप्त होकर रूपान्तरित होने में सक्षम होते हैं। अब प्रश्न उठता है कि विकारी पदार्थ क्या व कैसा होता है ? हमारी दृष्टि में विकारी पदार्थ जड़ ही हो सकता है। यदि एक-2 सूक्ष्म कण वा क्वाण्टा को जड़ के स्थान पर चेतन मानें, तब प्रश्न यह उठेगा कि क्या प्रत्येक कण वा क्वाण्टा की चेतना पृथक्-2 है वा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की चेतना एक ही है ? यदि प्रत्येक कण की चेतना पृथक्-2 है, तब ब्रह्माण्ड भर के सम्पूर्ण पदार्थ को एक प्रकार के नियमों में बँधा कैसे देखा जाता है ? जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी की ऐच्छिक क्रियाएँ, विचार एवं संस्कार पृथक्-2 होते हैं, उसी प्रकार यदि प्रत्येक कण व क्वाण्टा को चेतन मानें, तो उनकी क्रियाएँ परस्पर समान ही हों, यह आवश्यक नहीं है। वे परस्पर संगत रहें वा नहीं, यह भी आवश्यक नहीं है।

प्रत्येक कण की पृथक्-2 चेतन सत्ता होने पर भी वे परस्पर मिलकर इस सृष्टि की रचना हेतु परस्पर अपने नाना समूह बना सकें और सम्पूर्ण सृष्टि के असंख्य नियमों को बना सकें, यह सर्वथा असम्भव है। ऐसा कार्य कोई प्राणी नहीं कर सकता। सर्वाधिक बुद्धिमान् माना जाने वाला प्राणी मनुष्य अपने समाज का निर्माण करता है, परन्तु उन समाजों की संरचना ऐसी जटिल नहीं होती, जैसी कि विभिन्न जड़ पदार्थों में उन पदार्थों के अवयवभूत सूक्ष्म कण वा तरंगाणु निर्मित करते हैं। विभिन्न प्राणी अपनी सामाजिक संरचनाओं को समय-2 पर अपनी-2 रुचि, स्वभाव व संस्कार के अनुसार बदलते रहते हैं, परन्तु विभिन्न कणों वा तरंगाणुओं (क्वाण्टा) के नियम कभी परिवर्तित नहीं होते।

प्रश्न— जो-2 प्राणी जितना अधिक बुद्धिमान् होता है, उस-उसके संस्कार व रुचियाँ उतनी-2 अधिक मात्रा में परिवर्तित होती हैं। मनुष्य के सामाजिक नियमों में परिवर्तन बहुत अधिक होता चला आया है वा

होता जा सकेगा, परन्तु पशु-पक्षियों के स्वभाव व संस्कार में परिवर्तन न्यूनतर हुआ है और न्यूनतर ही हो सकेगा। पशु-पक्षियों से भी कम बुद्धि वाले सूक्ष्म जीवों के स्वभाव व संस्कार में और भी न्यूनतर परिवर्तन हो सकेगा वा हुआ है। इस कारण चेतन कण व क्वाण्टा के स्वभाव व संस्कार में परिवर्तन इस कारण नहीं होता, क्योंकि उनमें बुद्धि तत्त्व नगण्य होता है। इस कारण उनमें पृथक्-2 चेतन आत्मा का होना अतार्किक नहीं है।

उत्तर— आपका यह कथन उचित नहीं है। यदि आपके अनुसार प्रत्येक कण व क्वाण्टा को चेतन मानें और बुद्धि तत्त्व नगण्य मानें, तब वे कण व क्वाण्टा मिलकर इस सृष्टि का निर्माण कदापि नहीं कर सकते। इस सृष्टि के नियमों पर जितना अधिक विचार करें, इनमें उतनी ही अधिक गम्भीर बुद्धिमत्ता दिखाई देती है। सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव जो भी अधिकतम बुद्धिमत्ता के कार्य कर सकता है, उससे सहस्त्रों गुणा बुद्धिमत्ता के कार्य उसके स्वयं के शरीर में एक-2 कोशिका और उसके भी अवयवभूत एटम्स, मोलिक्यूल्स तथा इनसे भी सूक्ष्म कण व तरंगाणु (क्वाण्टा), मूल बल वा ऊर्जा के द्वारा सतत सम्पन्न हो रहे हैं, जिसे मानव जानता तक नहीं। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि नगण्य बुद्धि वाले कथित चेतन कणों के स्वभाव व संस्कार उनकी बौद्धिक अक्षमता के कारण ही अपरिवर्तित रहते हैं।

वास्तविकता यह है कि संसार की रचना किसी साधारण बुद्धि वाले चेतन की रचना नहीं है, बल्कि अनन्त बुद्धिसम्पन्न चेतन तत्त्व का चमत्कार है। निश्चित ही यह अनन्त बुद्धि किसी कण वा क्वाण्टा विशेष की नहीं है और न ही उन सबके सामूहिक रूप की है, बल्कि वह अनन्त बुद्धिसम्पन्न एक ही चेतन तत्त्व की है, जो किसी कण वा क्वाण्टा एवं

उन सबके कारणभूत प्राणादि पदार्थों तथा उसके भी उपादान कारणरूप प्रकृति से सर्वथा पृथक् होने पर भी उसमें बाहर-भीतर सर्वत: निरन्तर व्यापक है। उसे ही इस विराट् ब्रह्माण्ड का चेतनारूप ईश्वर तत्त्व कहा जाता है। वह स्वयं अनादि, अनन्त, अजन्मा, अमर होने के साथ-2 निर्विकार होता है, परन्तु विकारी प्रकृति रूप जड़ पदार्थ के अन्दर समय-2 पर प्रयोजनानुसार विकार उत्पन्न करके सुन्दर सृष्टि की रचना करता रहता है।

प्रश्न— यदि सृष्टि का रचयिता कोई सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ चेतन ईश्वर है भी, तब वह इस सृष्टि को क्यों रचता है ? वह सृष्टि रचना, प्रलय आदि के समय का निर्धारण कैसे करता है ? यदि वह यह कार्य न करे, तब उसको क्या हानि है ?

उत्तर— हम पूर्व में यह लिख चुके हैं कि **'क्यों'** प्रश्न का उत्तर जड़वादी नहीं दे सकते, जबकि ईश्वरवादी वा आत्मवादी ही इसका उत्तर दे सकते हैं। **'क्यों'** प्रश्न किसी कार्य का प्रयोजन वा उद्देश्य पूछता है। प्रयोजन केवल चेतन तत्त्व ही समझता है और वही समझ भी सकता है। जब हम चेतन तत्त्व की सत्ता को अस्वीकार करते हैं, उस समय यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न होता है कि जड़ ऊर्जा व द्रव्यादि पदार्थ में विकार क्यों उत्पन्न होता है ? क्यों समय विशेष पर सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है ? क्यों फिर प्रलय प्रारम्भ होती है ? वस्तुत: जड़ पदार्थ न तो स्वयं कोई प्रवृत्ति रखता वा रख सकता है और बुद्धिहीन होने के कारण न ही वह किसी प्रवृत्ति का प्रयोजन समझ सकता है।

इस सम्पूर्ण सृष्टि पर विचार करें, तो स्पष्ट होता है कि प्रत्येक जड़ पदार्थ स्वयं अपने लिए नहीं बना है, बल्कि वह किसी चेतन बुद्धिमान्

तत्त्व के उपभोग के लिए बना है। ईश्वर नामक जो चेतन तत्त्व है, वह सर्वथा पूर्ण व अकाम है। उसे अपने लिए इस सृष्टि से कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है। इस कारण एक और चेतन तत्त्व इस सृष्टि में अवश्य होना चाहिए, जो ज्ञान व क्रिया से युक्त हो और अल्पज्ञ, एकदेशी व अल्प शक्ति वाला हो। उसी चेतन तत्त्व को जीवात्मा कहा जाता है। ये मात्रा में असंख्य होते हैं। इन्हीं के उपभोग के लिए ईश्वर तत्त्व प्रकृति रूप पदार्थ से सृष्टि की रचना करता है। इसकी विशेष विवेचना यहाँ आवश्यक नहीं है, पुनरपि हम इतना अवश्य लिखना चाहते हैं कि ईश्वर पूर्ण व अकाम होने के कारण स्वयं के लिए सृष्टि की रचना नहीं करता और प्रकृति जड़ होने के कारण स्वयं ही भोक्ता नहीं हो सकती, वह केवल भोग्या के रूप में ही होती है। ईश्वर ऐसा मूर्ख भी नहीं है, जो कुतूहलवश निष्प्रयोजन सृष्टि की रचना और प्रलय करता रहे।

अब प्रश्न यह है कि जीवात्मा के लिए भी वह ईश्वर इस सृष्टि की रचना क्यों करता है ? यदि सृष्टि रचना न करे, तो क्या हानि होवे ? इसके उत्तर में संक्षेप में हम इतना कहेंगे कि प्रलयावस्था में अल्पज्ञ जीवात्मा, जो स्वयं अजन्मे व अमर होते हैं, यथा-तथा एवं यत्र-तत्र पूर्ण निष्क्रिय महाप्रलय रूप प्रकृति-पदार्थ में पड़े रहते हैं। केवल मुक्तात्मा ही परमात्मा के आनन्द में रमण करते हैं। यदि परमात्मा सृष्टि की रचना न करे, तो निष्क्रिय जीवों का अस्तित्व ही निरर्थक रहे, उन्हें कभी ज्ञान, आनन्द आदि का अनुभव न हो सके। उधर सम्पूर्ण पदार्थ, जिससे सृष्टि का निर्माण होता है, भी सर्वथा निष्प्रयोजन हो जाये और स्वयं ईश्वर की सत्ता, शक्ति व ज्ञान भी निरर्थक हो जायें। इस कारण अपने साथ-2 जीवात्मा व प्रकृति रूपी पदार्थ की सत्ता एवं उनके गुणों को सार्थक करने तथा जीवात्माओं को सांसारिक सुख भोग के साथ मोक्ष प्राप्ति के उपाय

करने हेतु ईश्वर सृष्टि रचना करता है। ऐसा करना उसका नियत व निरन्तर स्वभाव है, जैसे आँख का स्वभाव देखना तथा श्रोत्र का स्वभाव सुनना है, वैसे ही जीवों के उपकार हेतु सृष्टि रचना और समय पर प्रलय करना उसका स्वभाव है।

यहाँ हमने ईश्वर तत्त्व विषय पर संक्षेप में चर्चा की है। ईश्वर तत्त्व के विषय में यथार्थ ज्ञान होना सम्पूर्ण मानव जाति किंवा प्राणिमात्र के कल्याण हेतु अनिवार्य है। आज संसार में जितनी भ्रान्ति इस विषय में है, उतनी अन्य किसी विषय में नहीं है। ईश्वर विषयक भ्रान्ति ने धर्म के विषय में बड़ी-2 भ्रान्तियों को जन्म देकर मानव जाति को एक वैज्ञानिक मानव धर्म (वैदिक धर्म) से विमुख करके नाना मत-मतान्तरों में बाँटकर ईर्ष्या, द्वेष, वैर, रक्तरंजित क्रूर हिंसा से ग्रस्त करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। उधर ईश्वर के कल्पित रूपों ने वैज्ञानिक प्रतिभासम्पन्न ही नहीं, अपितु सामान्य प्रबुद्ध व्यक्ति को भी ईश्वर तत्त्व से विमुख करके उसे नितान्त भोगवादी, स्वच्छन्द, दुराचारी एवं अराजक बना दिया है, जिसके कारण मानव न केवल संसार के जीवों को अपना भक्ष्य बनाकर त्रास दे रहा है, अपितु वह स्वयं को भी बेरोक और गलाकाट प्रतिस्पर्धी बनाकर संसार में अशान्ति, संघर्ष, घृणा, असमानता, वर्गभेद आदि पापों में धकेल रहा है, जहाँ से बाहर निकलने का रास्ता किसी को भी दिखाई नहीं दे रहा।

हमें आशा है कि पाठक इस पुस्तक में दिये विषय पर गम्भीरता से मनन करके स्वयं अपनी प्रज्ञा से इस विषय को विस्तार देंगे, जिससे संसार के प्रबुद्ध मानव ईश्वर विषयक भ्रान्तियों से बच सकेंगे।

* * * * *

वेद-रक्षार्थ मार्मिक निवेदन

वैदिक सनातन विचारधारा विश्व की सर्वश्रेष्ठ, सनातन एवं सर्वहित-कारिणी विचारधारा है। सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत काल पर्यन्त वैदिक सत्य सनातन धर्म संसार के मनुष्यों का एकमात्र धर्म रहा। महर्षि ब्रह्मा, भगवान् मनु, महाराजा इक्ष्वाकु, महाराजा हरिश्चन्द्र, भगवान् शिव, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण, महर्षि परशुराम, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अगस्त्य, महर्षि भरद्वाज, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, महावीर हनुमान, महर्षि पतञ्जलि, महर्षि ऐतरेय महीदास, कणाद, कपिल जैसे दिव्य पुरुषों, भगवती उमा, देवी सीता, सती अनसूया, देवी लोपामुद्रा, देवी रुक्मिणी, गार्गी, अपाला जैसी महिमामयी नारियाँ इस वैदिक धर्म की ही देन हैं। वेद प्रतिपादित धर्म (भौतिक व पदार्थ विज्ञान) के कारण सम्पूर्ण आर्य्यावर्त सम्पूर्ण विश्व में सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित था। सम्पूर्ण विश्व भी सुखी, सम्पन्न एवं आध्यात्मिक उन्नति से परिपूर्ण था। भगवान् श्रीराम का राज्य, जहाँ किसी प्राणी को किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं था, आज तक संसारभर में विख्यात है।

क्या आप जानते हैं कि इस सबका कारण क्या था? इसका उत्तर वर्तमान काल में केवल ऋषि दयानन्द सरस्वती ने दिया और कहा कि भूमण्डल की सम्पूर्ण उन्नति एवं ज्ञान-विज्ञान व तकनीक की पराकाष्ठा का मूल कारण था— वेद। सभी मनुष्य वेदों के विद्वान् एवं तदनुसार आचरणवान् होते थे। सम्पूर्ण विश्व में ज्ञान-विज्ञान का विस्तार आर्य्यावर्त से ही हुआ। दुर्भाग्य से महाभारत काल से पूर्व ही आर्य्यावर्त के साथ-साथ विश्व में मनुष्यों के सत्त्वगुण का ह्रास होते जाने के कारण वेदविद्या का भी अत्यधिक ह्रास होने लगा। इस कारण वैदिक सनातन धर्म विद्रूप

हो गया। इसके नाम पर पशुबलि, नरबलि, मांसाहार, रंगभेद, छुआछूत, मदिरापान, अश्लीलता आदि पापों का प्रचलन हो गया। इसके प्रतिक्रिया-स्वरूप चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि मतों का प्रादुर्भाव हुआ। चार्वाक मत नितान्त भोगवादी था, परन्तु जैन व बौद्ध मतों के प्रवर्तक पवित्रात्मा होने के कारण सदाचार के पथिक बने, लेकिन महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् बौद्ध मत वैदिक धर्म का प्रबल विरोधी एवं वैदिक साहित्य का विध्वंसक बन गया।

ऐसे अन्धकार भरे काल में कुमारिल भट्ट एवं आद्य शंकराचार्य जैसे महापुरुषों ने वैदिक सनातन धर्म को आर्य्यावर्त में पुनः प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया, परन्तु आचार्य शंकर की महती प्रज्ञा से घबराकर वेदविरोधियों ने छल से उन्हें विष दे दिया और इस अद्‌भुत प्रत्युत्पन्नमति सम्पन्न शास्त्रार्थ समर के योद्धा को भारतभूमि से विदा कर दिया। इनके जाने के पश्चात् इनके अनुयायी भी इनके मन्तव्यों को अच्छी प्रकार समझ नहीं पाये और स्वयं को ब्रह्म मानकर कमण्डलु लेकर मिथ्या वैरागी भिक्षोपजीवी बनकर रह गये। उधर बौद्ध व जैन मतों के द्वारा अहिंसा की मिथ्या परिभाषा के प्रचार से क्षत्रिय भी क्षात्रधर्म भूलकर कायर वा शस्त्रास्त्र-विहीन बन गये।

उधर विश्व के अन्य देशों में पारसी, यहूदी, ईसाई व इस्लाम आदि मत भी प्रचलित होने से सम्पूर्ण विश्व में नाना पापों, दुःखों, अशान्ति व अराजकता का ताण्डव होने लगा। ऐसे दुष्काल में गुरु नानकदेव, संत कबीर, संत रविदास, संत ज्ञानेश्वर आदि ने अपने-अपने स्तर पर समाज को दिशा देने का प्रयास किया, परन्तु वेदविद्या का पूर्ण प्रकाश न होने से ये सभी महापुरुष काल की क्रूर गति को रोक नहीं पाये, बल्कि नये-नये सम्प्रदाय और उत्पन्न हो गये। वेद का नाम लेने वाले कथित ब्राह्मणों ने

अन्य वर्णों एवं महिलाओं को वेद पढ़ने से ही वंचित कर दिया और स्वयं भी वेद के नाम पर मात्र कर्मकाण्डोपजीवी होकर रह गये। पशुबलि, नरबलि, मांसाहार, मदिरा सेवन, छुआछूत, नारी शोषण, बाल विवाह, जैसे पाप वैदिक कर्मकाण्ड के नाम पर प्रचलित थे। उधर देश के क्षत्रिय राजा मूर्तिपूजा व फलित ज्योतिष के भ्रमजाल में फँसकर तथा पारस्परिक फूट के कारण विदेशी आक्रान्ताओं से पराजित होने लगे और विदेशी लुटेरे हमारे घर में शासक बन गये। उन्होंने हमारा धन लूटा, हमारे साहित्य को जलाया, तो अंग्रेज उसे लूटकर वा चुराकर अपने देश ले गये। इस प्रकार संसार में हमारा शिरोमणि देश दीन-हीन हो गया। ऐसे समय में इस भारतभूमि में ऋषि दयानन्द जैसे दिव्य पुरुष ने जन्म लिया। उन्होंने वेदविद्या को भुला देना ही, अपने देश के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के अध:पतन का कारण माना।

इस कारण उन्होंने सम्पूर्ण क्रान्ति का बिगुल बजाने का संकल्प लिया। स्वराज्य का प्रथम उद्घोष किया, सामाजिक दुरितों के विरुद्ध शंखनाद किया, परन्तु उनके सब कार्यों में से सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था— वेदोद्धार करना। उन्होंने मध्यकालीन वेदभाष्यकारों के भाष्यों के दोषों को दर्शाते हुए वेद की यथार्थ भाष्य शैली, जो वेद के वेदत्व का संकेत दे सकती थी, को संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। दुर्भाग्यवश ऋषि दयानन्द का जीवन बहुत छोटा रहा, विधर्मियों ने उन्हें भी संसार से विदा कर दिया। इस कारण उनका वेदभाष्य बहुत ही संक्षिप्त व सांकेतिक रह गया।

यही कारण था कि उनके अनुयायी आर्य विद्वान् भी उसे पूर्णत: नहीं समझ पाये और जो शेष वेद का भाष्य इन विद्वानों ने किया, उसमें भी अनेकत्र वही दोष आ गये, जो सायण, महीधर, स्कन्दस्वामी आदि के

भाष्यों में विद्यमान थे। आर्यसमाज ने इस देश में स्वाधीनता संग्राम के साथ समाज सुधार के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। किसी भी संस्था-संगठन वा सम्प्रदाय से अधिक बलिदान आर्यसमाज ने दिये, परन्तु वेद के अपौरुषेयत्व तथा सर्वविज्ञानमयत्व की सिद्धि की दिशा में विगत डेढ़ सौ वर्ष में भी आर्यसमाज कोई कार्य नहीं कर पाया। आर्यसमाज सदैव शास्त्रार्थ-समर का एकछत्र विजेता भी रहा, परन्तु वेद के यथार्थ विज्ञान के बिना यह विजय अधूरी है।

आज परमपिता परमात्मा ने पूज्य आचार्य अग्निव्रत के रूप में हमें पुनः एक अवसर दिया है। भीनमाल, राजस्थान से 10 कि.मी. दूर एक छोटे से ग्राम में रहकर आचार्य श्री वेदों का वास्तविक स्वरूप संसार के समक्ष रखने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रयास में पहले आपने ऋग्वेद को समझाने वाले उसके ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण, जिसे लगभग सात हजार साल पुराना माना जाता है, का वैज्ञानिक (वस्तुतः वास्तविक) भाष्य वेदविज्ञान-आलोकः (लगभग 2800 पृष्ठ) के रूप में विश्व में पहली बार किया है। यह ग्रन्थ सृष्टि विज्ञान के ऐसे अत्यन्त गम्भीर व अनसुलझे रहस्यों का उद्घाटन करता है, जिनके बारे में विज्ञान की वर्तमान पद्धति से सैकड़ों वर्षों में भी नहीं जाना जा सकेगा।

इसके पश्चात् आचार्य श्री ने वेदों को समझने के लिए वैदिक पदों की व्याख्या करने वाले एक अनिवार्य ग्रन्थ महर्षि यास्क विरचित निरुक्त का वैज्ञानिक भाष्य 'वेदार्थ-विज्ञानम्' (लगभग 2000 पृष्ठ) के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ में आचार्य श्री ने सैकड़ों मन्त्रों का भाष्य किया, किसी मन्त्र का एक, किसी का दो, तो किसी का तीन प्रकार का भाष्य किया है। उदाहरणार्थ 'विश्वानि देव...' मन्त्र का 16 प्रकार का भाष्य कर आचार्य श्री ने यह सिद्ध किया है कि किसी भी वेद

मन्त्र के अनेक प्रकार के भाष्य सम्भव हैं, जैसा कि तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.10.11 में कहा है—

'अनन्ता वै वेदा:'

अर्थात् वेदों में अनन्त ज्ञान है। ये दोनों ग्रन्थ आर्यसमाज ही नहीं, अपितु सनातन धर्म के गौरव हैं और हमें गर्व है कि हमारे मध्य में आचार्य श्री के रूप में अभी भी ऐसे वैज्ञानिक (वर्तमान की भाषा में) विद्यमान हैं, जो हमें हमारे मूल वेद, ईश्वर, धरती माँ और गौ माता से जोड़ते हैं। यह एक अकाट्य सत्य है कि जो अपने मूल से कट जाता है, वह नष्ट हो जाता है और यही हो भी रहा है। वेद और ईश्वर से दूर जाता यह संसार निरन्तर विनाश की ओर बढ़ता जा रहा है।

समाधान एक ही है— हमें आचार्य श्री के इस दुष्कर कार्य में अपना अधिक से अधिक सहयोग करना होगा, नहीं तो समय निकलने के पश्चात् हमारे पास पछताने के अलावा कुछ नहीं बचेगा। भारत के डी.आर.डी.ओ., इसरो से लेकर नासा, सर्न तक व नोबेल पुरस्कार विजेता तक कितने ही वैज्ञानिकों ने आचार्य श्री के अनुसंधान कार्य का लोहा माना है अथवा वर्तमान विज्ञान के सिद्धान्तों पर उठाये प्रश्नों से अभिभूत हुए वा निरुत्तर हुए हैं। जिस कार्य में वैज्ञानिकों को अरबों-खरबों डॉलर खर्च करने के बाद भी सफलता नहीं मिली, वह कार्य आचार्य श्री ने अत्यल्प संसाधनों में एक छोटी सी जगह पर रहकर और विपरीत परिस्थितियों में अनेक प्रकार के विरोधों को सहन करते हुए भी कर दिखाया है। इसके पश्चात् आचार्य श्री की योजना वेदों के ऐसे सूक्तों का भाष्य करने की है, जिनका भाष्य अत्यन्त कठिन है या जिनमें विज्ञान के गम्भीर रहस्य छुपे हुए हैं।

इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वैदिक विज्ञान के इस

महान् यज्ञ में हम अपनी पवित्र आहुति अवश्य प्रदान करें और परमपिता परमात्मा के आशीर्वाद के पात्र बनें। इसके अतिरिक्त वेद, वैदिक धर्म और राष्ट्र को बचाने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

निवेदक— विशाल आर्य व डॉ. मधुलिका आर्या,
प्राचार्य व उप-प्राचार्या,
आधुनिक एवं वैदिक भौतिकी शोध संस्थान
(श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास द्वारा संचालित)
भीनमाल (राजस्थान) 343029

जय माँ वेद भारती

एक आहुति वैदिक विज्ञान यज्ञ के लिए

सज्जनो! यह संस्थान आपके दान पर ही निर्भर है, आप अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग अवश्य करें, ऐसी आपसे अपेक्षा है। कृपया नैतिक व्यवसाय द्वारा प्राप्त धन ही दान करें।

UPI : 9829148400@upi donate.vaidicphysics.org

'न्यास को दिया गया दान आयकर अधिनियम की धारा 80-जी के अन्तर्गत करमुक्त है।'

9829148400 /vaidicphysics www.vaidicphysics.org vaidicphysics@gmail.com

सृष्टि संचालक

/vaidicphysics

मनुष्य जब से इस धरती पर जन्मा है, तभी से वह इस ब्रह्माण्ड को कुतूहलपूर्वक देखता रहा है। वह इस बात पर भी चिन्तन-मनन करता रहा है कि यह ब्रह्माण्ड स्वयं बन गया अथवा इसे बनाने वाली कोई चेतन सत्ता विद्यमान है। जो लोग यह मानते हैं कि इस ब्रह्माण्ड को बनाने वाली एक चेतन सत्ता है, वे इस बात पर एक मत नहीं है कि उस सत्ता का स्वरूप कैसा है। इस कारण संसार में जितना अधिक रक्तपात ईश्वर व धर्म विषयक मतभेदों के कारण हुआ है व हो रहा है, उतना अन्य किसी भी कारण नहीं हुआ। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि जब ब्रह्माण्डस्थ किसी भी पदार्थ के विषय में कोई विवाद नहीं, आधुनिक विज्ञान की किसी भी शाखा को लेकर कोई उपद्रव नहीं, तब ब्रह्माण्ड के रचयिता को लेकर मतभेद व शत्रुता क्यों है ? आज सबने ईश्वर व धर्म को दुर्बल आस्था का विषय मान लिया है, जो जरा सी बात पर हिल उठती है। जरा विचारें कि जब ब्रह्माण्ड का अस्तित्व व स्वरूप आस्था की बैसाखी की अपेक्षा नहीं रखता, तब ईश्वर को आस्था की बैसाखी की क्या आवश्यकता है ? वस्तुत: जितना एकत्व सृष्टि के विज्ञान में है, उतना ही एकत्व ईश्वर के स्वरूप व विज्ञान में होना चाहिए।

इस पुस्तक में ईश्वर के अस्तित्व व स्वरूप की वैज्ञानिकता को ही दर्शाया है। संसार के सभी मनुष्यों को सर्वप्रथम अपनी-अपनी आस्थाओं, विश्वासों व कल्पनाओं को त्यागकर निष्पक्ष वैज्ञानिक बुद्धि से ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि करनी चाहिए। यदि ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है, तब सृष्टि बनाने व उसका संचालन करने वाली सत्ता का स्वरूप कैसा होना चाहिए, इस पर निष्पक्ष वैज्ञानिक बुद्धि से विचारना चाहिए। इससे सम्पूर्ण मानव समाज से मत-पन्थ, मजहब आदि समाप्त होकर एक वैज्ञानिक मानव धर्म की स्थापना होगी। इस सम्पूर्ण भूमण्डल में सुख, शान्ति व प्रेम का सुखद साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। यही इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य है।

— आचार्य अग्निव्रत

thevedscience.com

द वेद साइंस पब्लिकेशन

ISBN 978-81-976604-9-8